बोध पंचदशिका

आचार्य अभिनवगुप्त कृत, हरिहर त्रिक संस्थान प्रकाशन।

मूल, श्लोकार्थ तथा हरिहर त्रिक आश्रम के व्याख्यान।

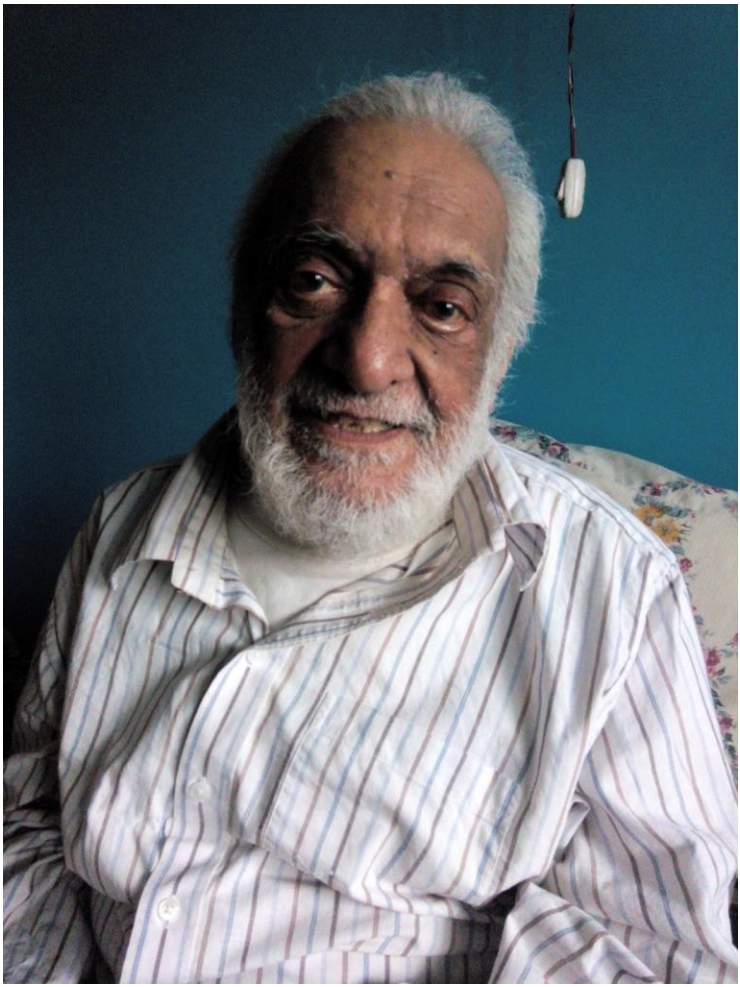

परमपूज्य गुरुदेव हरिविलासजी आसोपा

बोध पञ्चदशिका

मूल, श्लोकार्थ

तथा

हरिहर त्रिक आश्रम के व्याख्यान

हरिहर त्रिक संस्थान प्रकाशन

महेश्वर

मध्यप्रदेश

हरिहर त्रिक आश्रम नर्मदा के उत्तर तट पर मध्यप्रदेश के महेश्वर नगर में स्थित है। परम पूज्य गुरुदेव हरिविलासजी आसोपा की सदेच्छा के अनुसार यहाँ पिछले ११वर्षों से प्रति गुरुवार काश्मीर शैव दर्शन पर सत्संग होता है। यहाँ की सुविधाएँ निःशुल्क हैं। यहाँ होने वाले व्याख्यानों को आश्रम की वेबसाइट पर उपलब्ध लिंक द्वारा सुना जा सकता है।

28 March 2021 Holi Poornima

Website: - https://harihartrik.in

Email: - harihartrikashram@gmail.com

Contact: - Vishwatma Trust 83, Panchvati Colony Maheshwar M. P. 451 224
President: - Dr. Mohan Lal Gupta 9329435778
Secretary: - Ajay Joshi 9425334174
Treasurer: - Chandrabhushan Mahajan 8878855110

मूल्य: - आपका स्नेह।

यह पुस्तक आश्रम में होने वाले साप्ताहिक
कार्यक्रम के श्रोताओं को सादर समर्पित है।

अनुक्रमाणिका

1.	Preface	पृष्ठ 1
2.	पूर्व कथन	पृष्ठ 3
3.	श्लोक एवं श्लोकार्थ	पृष्ठ 5
4.	पाठ 1 परिचय	पृष्ठ 9
5.	पाठ 2	पृष्ठ 22
6.	पाठ 3	पृष्ठ 36
7.	पाठ 4	पृष्ठ 50
8.	पाठ 5	पृष्ठ 63
9.	पाठ 6	पृष्ठ 80
10.	पाठ 7	पृष्ठ 86
11.	पाठ 8	पृष्ठ 100
12.	पाठ 9	पृष्ठ 114

“अगर मेरी अंगुली मेरी ही आँख में चली जाती है तो कोई पाप नहीं होता, आँख भी मैं ही हूँ और अंगुली भी मैं ही हूँ। अगर यह अंगुली किसी और की है तो मैं झगड़ा शुरू कर दूंगा “इसने मेरी आँख में अंगुली डाली”, वह अलग है और मैं अलग हूँ। पाप अथवा पुण्य का जन्म तभी संभव है जब दो भिन्न सत्ताएँ अंतर्क्रिया करें। जब आप सम्पूर्ण सृष्टि को एक इकाई की तरह देखते हो तो पाप अथवा पुण्य का कोई प्रश्न ही नहीं होता। इसी स्थिति के लिए कहा गया है “न पापं न पुण्यं”। पाप पुण्य से परे मुक्ति की राह अद्वैत दर्शन से आरम्भ होती है और अद्वैत बोध से ही पूर्ण होती है”।

बोधपञ्चदशिका मूल श्लोकाः

ॐ अनस्तमितभारूपस्तेजसां तमसामपि।
य एकोऽन्तर्यदंतश्च तेजांसि च तमांसि च॥१॥

स एव सर्वभूतानां स्वभावःपरमेश्वरः।
भावजातं हि तस्यैव शक्तिरीश्वरतामयी॥२॥

शक्तिश्चशक्तिमद्रूपाद्वयतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥३॥

स एव भैरवो देवो जगद्धरणलक्षणः।
स्वात्मादर्शे समग्रं हि यच्छक्त्या प्रतिबिम्बितम्॥४॥

तस्यैवैषा परा देवी स्वरूपामर्शनोत्सुका।
पूर्णत्वं सर्वभावेषु यस्य नाल्पं न चाधिकम्॥५॥

एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः।
विचित्रान्सृष्टिसंहारान्विधत्ते युगपद्विभुः॥६॥

अतिदुर्घटकारित्वमस्यानुत्तममेव यत्।
एतदेव स्वतन्त्रत्वमैश्वर्यं बोधरूपता॥७॥

परिच्छिन्नप्रकाशत्वं जडस्य किल लक्षणम्।
जडाद्विलक्षणो बोधो यतो न परिमीयते॥८॥

एवमस्य स्वतन्त्रस्य निजशक्त्युपभेदिनः।
स्वात्मगाःसृष्टिसंहाराः स्वरूपत्वेन संस्थिताः॥९॥

तेषु वैचित्र्यमत्यन्तमूर्ध्वाधस्तिर्यगेव यत्।
भुवनानि तदंशाश्च सुखदुःखमतिर्भवः॥१०॥

यदेतस्यापरिज्ञानं तत्स्वातन्त्र्यं हि वर्णितम्।
स एव खलु संसारो जडानां यो विभीषकः॥११॥

तत्प्रसादरसादेव गुर्वागमत एव वा।
शास्त्राद्वा परमेशस्य यस्मात्कस्मादुपागतम्॥१२॥

यत्तत्त्वस्य परिज्ञानं स मोक्षः परमेशता।
तत्पूर्णत्वं प्रबुद्धानां जीवन्मुक्तिश्च सा स्मृता॥१३॥

एतौ बंधविमोक्षौ च परमेशस्वरूपतः।
न भिद्येते न भेदो हि तत्त्वतः परमेश्वरे॥१४॥

इत्थमिच्छाकलाज्ञानशक्तिशूलाम्बुजाश्रितः।
भैरवः सर्वभावानां स्वभावः परिशील्यते॥१५॥

सुकुमारमतीञ्शिष्यान्प्रबोधयितुमञ्जसा।
इमेऽभिनवगुप्तेन श्लोकाः पञ्चदशोदिताः॥१६॥

॥समाप्ता चेयं बोधपञ्चदशिका॥

PREFACE

In the Lap of MAA NARMADA, our Param-Pujya Guru Dev Shree Sahajanand Nath Harivilasji Aasopa inaugurated Harihar Trika Ashram, in the town of Maheshwar in western Madhya Pradesh, on Sunday10th January 2010 in order to spread spirituality of advaita in the light of Kashmir Shaivism (Trik Philosophy) to all thirsty aspirants. Gurudev selected his disciple Dr. Mohan Lal Gupta (Cheena) for this great cause. Since then every Thursday between 8.44PM to 9.30PM Gurudev seated on Doctor Sahibs tongue to give lectures on Trika Philosophy, Upanishads, Spirituality, Advaita and other related topics in a dedicated disciplined manner. In this series the nine lectures, held from 30th November 2017 to 25th January 2018, were dedicated to Bodh Panchdashika. These lectures comprise of detailed commentary in simple to understand language. Bodh Panchdashika is a treatise of 15 verses written by sage Abhinavgupt in 11th century for instant transformation of few of his disciples who were of moderate intelligence and were completely surrendered to him. This literature may aptly be called **"understanding the basics of Non-Dual philosophy"**. The language of all these lectures is **Hindi**.

Few sincere listeners have tried to give these audio Lectures the shape of a book. First lecture is mainly introduction to Kashmir Shaivism. All the audios of Harihar Trik Ashram are

available on https://archive.org/search.php?query=Dr%20Mohanlal%20Gupta the links for current subject are as follows: - introduction:-

https://archive.org/details/introduction-to-kashmir-shaivism/171130_001.MP3,

Next eight lectures are about Bodh Panchdashika with detailed commentary. The audios of these lectures are available on https://archive.org/details/BodhPanchdashikaLectures,

Original Sanskrit verses are given at the beginning followed by their Hindi translation. Next part of the book contains nine lectures held at HariharTrik Aashram Maheshwar.

All the details of Ashram activities and links to lectures and write-ups are available on Ashram's website: -

https://harihartrik.in

Bawra Sharanam

Piaray Lal Kher,
Shri Mata Vaishno Devi University
Katra J & K
PIN 182320
Mobile: - + (91)7006216877

प्राक्कथन

आदरणीय पाठक बंधु,

मेरे परम पूज्य गुरुदेव श्री हरिविलासजी आसोपा (मेरे प्यारे आपसा) की शक्ति के प्रताप से ही मुझे अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ भी कहने का साहस हो पाया। हरिहर त्रिक आश्रम के रूप में उन्होंने मुझे मानो उनका समस्त अंतस दे दिया। उनकी दिव्य कृपा से यह संस्थान काश्मीर शैव दर्शन जैसे ज्ञान के सर्वोच्च विषय पर आगंतुकों के बीच चर्चा करने का केंद्र बन गया। आपसा ने जो इच्छा प्रकट की उसे मैं शिरोधार्य कर सका यही मेरा परम सौभाग्य है। आपसा ने मुझे ईश्वर आश्रम श्रीनगर की, ईश्वरस्वरूप बाबा लक्ष्मणजू महाराज की शिष्या, माँ प्रभादेवीजी के पास आशीर्वाद लेने भेजा जिनका आशीर्वाद तथा जीवंत संपर्क आज भी मेरे साथ है। उन्होंने ही मुझे अद्वैत शैव दर्शन के रहस्यों से अवगत करवाया था।

वर्ष २००७ में कुछ मित्रों ने मिल कर महेश्वर नगर मध्यप्रदेश में "विश्वात्मा न्यास" का गठन किया जिसकी देखरेख में हरिहर त्रिक आश्रम का निर्माण आरम्भ हुआ। १० जनवरी २०१० को प्राप्त गुरुआज्ञा से आश्रम की गतिविधियाँ आरम्भ हो गयीं। यहाँ की समस्त आध्यात्मिक गतिविधियाँ निःशुल्क हैं तथा बिना किसी भेदभाव के सर्वसुलभ हैं।

कुछ साधकों को अन्तःप्रेरणा हुई कि कुछ व्याख्यानों को पुस्तक का स्वरूप दिया जाये और प्रथम प्रयास के रूप में यह परिणाम आपके हाथों में है। मुझे अपनी ओर से इतना ही कहना है कि ये व्याख्यान बोल-चाल की भाषा में अत्यंत सरलीकृत हैं क्योंकि इनका उद्देश्य कोई साहित्यिक रचना का नहीं वरन एक अवधारणा को सरलता से श्रोताओं के हृदय पटल पर अंकित करने का है। इन व्याख्यानों में व्याकरण तथा भाषा की शुद्धता पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है, दैनंदिन के उदाहरणों तथा वैज्ञानिक अवधारणाओं का स्वतंत्रता से

उपयोग किया गया है। चूंकि साप्ताहिक व्याख्यानों में एक ही बात की पुनरावृत्ति स्वाभाविक है जिन्हें कुछ सीमा तक हटाने में कई साधकों ने श्रम किया है, तथापि कुछ पुनरावृत्तियाँ जो उपयोगी प्रतीत हो रही थीं उन्हें व्याख्यान की सहज निरंतरता बनाये रखने के लिए जस का तस रहने दिया गया है। श्री प्यारेलालजी, हजारों किलोमीटर दूर कटरा (जम्मू काश्मीर) रह कर भी, इन सभाओं के नियमित श्रोता हैं, इन्होंने भी इन व्याख्यानों के संपादन में हृदय से सहयोग किया है। बड़वानी के श्री रविन्द्र गुप्ता ने स्वेच्छा से व्याख्यानों को सुन कर इस पुस्तक के टाइपिंग का कार्य किया है। ये सब साधुवाद के पात्र हैं। निश्चय ही मेरे इन व्याख्यानों में कई त्रुटियाँ होंगी जो मेरी अल्पबुद्धि का ही परिणाम हैं। पाठकगण उन त्रुटियों को सुधारने में मेरा सहयोग करेंगे ऐसी अपेक्षा है। अगर कोई मूल व्याख्यानों को सुनना चाहे तो इनकी लिंक आश्रम की वेबसाइट https://harihartrik.in पर उपलब्ध है।

अंत में मैं गुरुवार की सभाओं में आगंतुक उन समस्त श्रोताओं का हृदय से उपकार स्वीकार करता हूँ जिनकी उपस्थिति तथा रुचि ही सही अर्थों में इन व्याख्यानों की रचयिता है।

परमशिव मेरे समस्त मित्रों, सहयोगियों, ट्रस्ट के न्यासियों, श्रोताओं तथा इस पुस्तक के पाठकों पर अनुग्रह करें यही मंगलकामना है।

डॉ. मोहन लाल गुप्ता,
८३, पंचवटी कॉलोनी महेश्वर (खरगोन) मध्यप्रदेश पिन ४५१२२४ मोबाइल ९३२९४ ३५७७८
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा २८ मार्च २०२१

बोधपञ्चदशिका

आचार्य अभिनवगुप्त कृत

मूल श्लोक एवं हिंदी श्लोकार्थ

ॐ अनस्तमितभारूपस्तेजसां तमसामपि।
य एकोऽन्तर्यदंतश्च तेजांसि च तमांसि च॥१॥

उसका प्रकाश किसी बाहरी प्रकाश से अथवा अन्धकार से आवृत्त नहीं किया जा सकता। समस्त प्रकाश एवं अन्धकार सर्वोच्च चेतना में ही समाहित है॥१॥

स एव सर्वभूतानां स्वभावःपरमेश्वरः।
भावजातं हि तस्यैव शक्तिरीश्वरतामयी॥२॥

उसे परमेश्वर शिव कहते हैं। वह सभी जीवों का अस्तित्व है। सारा प्रकट विश्व उसकी शक्ति का ही विकास है। सृष्टि शिव के गौरव से ओतप्रोत है॥२॥

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥३॥

शिव एवं शक्ति यह नहीं जानते कि वे अलग हैं। शिव एवं शक्ति ऐसे जुड़े हैं जैसे अग्नि एवं दाहकता॥३॥

स एव भैरवो देवो जगद्भरणलक्षणः।
स्वात्मादर्शे समग्रं हि यच्छक्त्या प्रतिबिम्बितम्॥४॥

वही भैरवदेवता है। वह संसार चक्र में सृष्टि रचता है, पालन करता है, संहार करता है, स्वरूप को छिपाता है तथा अनुग्रह करता है। सारा संसार

परमेश्वर स्वयं के स्वरूप में निर्मित करता है जैसे कि दर्पण में संसार का प्रतिबिम्ब प्रकाशित होता है॥४॥

तस्यैवैषा परा देवी स्वरूपामर्शनोत्सुका।
पूर्णत्वं सर्वभावेषु यस्य नाल्पं न चाधिकम्॥५॥

सृष्टि समग्र रूप से शिव की शक्ति ही है। शिव सृष्टि का निर्माण करता है ताकि वह स्वयं के स्वभाव को पहचान सके। शक्ति, जो विश्व का स्वरूप है, सतत् ईश्वर चेतना को पाने के प्रति उत्सुक रहती है। विश्व रूप में शक्ति अज्ञान की स्थिति में हो कर भी प्रमेय की हर रचना में पूर्ण रहती है॥५॥

एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः।
विचित्रान्सृष्टिसंहारान्विधत्ते युगपद्विभुः॥६॥

सर्वोच्च ईश्वर शिव जो सर्वव्याप्त हैं, जो अपनी ही शक्ति के साथ खेलने एवं गिरने में आनंदित होते हैं, सृष्टि एवं संहार की क्रिया (अक्रम रूप से) एकसाथ करते हैं॥६॥

अतिदुर्घटकारित्वमस्यानुत्तममेव यत्।
एतदेव स्वतन्त्रत्वमैश्वर्यं बोधरूपता॥७॥

यह सर्वोच्च क्रिया शिव के सिवा किसी अन्य शक्ति द्वारा इस सृष्टि में संपन्न नहीं हो सकती। शिव निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र हैं, उनके पास पूर्ण प्रज्ञा है एवं वे सम्पूर्ण गौरव के स्वामी हैं॥७॥

परिच्छिन्नप्रकाशत्वं जडस्य किल लक्षणम्।
जडाद्विलक्षणो बोधो यतो न परिमीयते॥८॥

चेतना की सीमित अवस्था जड़ अवस्था है और यह अवस्था अपना विकास संसार के अन्य रूपों में नहीं कर सकती। स्वातंत्र्य का स्वामी चैतन्य की इस जड़ अवस्था से पूर्णतः अलग है। इसलिए तुम उसे मात्र

एक तरह से नहीं जान सकते। जैसे ही तुम उसे एक तरह से पहचानते हो तब उसी क्षण तुम उसे दूसरी तरह भी पहचान लेते हो॥८॥

एवमस्य स्वतन्त्रस्य निजशक्त्युपभेदिनः।
स्वात्मगाःसृष्टिसंहाराः स्वरूपत्वेन संस्थिताः॥९॥

पूर्ण स्वतंत्र परमेश्वर शिव के स्वभाव में संसार की समस्त भिन्नता, सृष्टि एवं संहार एकसाथ समाये हैं। उसी समय यह भिन्नता अज्ञान के क्षेत्र में प्रखरता से अस्तित्व में होती है॥९॥

तेषु वैचित्र्यमत्यन्तमूर्ध्वाधस्तिर्यगेव यत्।
भुवनानि तदंशाश्च सुखदुःखमतिर्भवः॥१०॥

इस संसार में तुम विभिन्न प्रकार के सृष्टि एवं संहार के उदाहरण देखोगे। कुछ ऊपरी चक्र में रचा जाता है, कुछ निचले चक्र में रचा जाता है और कुछ अगल बगल में रचा जाता है। संसार से जुड़े संसार के छोटे हिस्से रचे जाते हैं। जीव की स्थिति के अनुकूल दुःख, सुख एवं बौद्धिक क्षमताएँ रची जाती हैं। यही संसार है॥१०॥

यदेतस्यापरिज्ञानं तत्स्वातन्त्र्यं हि वर्णितम्।
स एव खलु संसारो जडानां यो विभीषकः॥११॥

अगर तुम्हें यह बात समझ नहीं आती कि समय की लम्बाई जैसी कोई चीज नहीं है तो यह बुद्धिभ्रम भी शिव का स्वातंत्र्य है। इस भ्रम के ही परिणाम में संसार का अस्तित्व है। और जो अज्ञान से भरे हैं वे संसार से भयभीत रहते हैं॥११॥

तत्प्रसादरसादेव गुर्वागमत एव वा।
शास्त्राद्वा परमेशस्य यस्मात्कस्मादुपागतम्॥१२॥
यत्तत्त्वस्य परिज्ञानं स मोक्षः परमेशता।
तत्पूर्णत्वं प्रबुद्धानां जीवन्मुक्तिश्च सा स्मृता॥१३॥

जब शिवानुग्रह से, गुरु की शिक्षा या शक्तिपात से अथवा शैवशास्त्रों के अध्ययन से तुम्हें सत्य का वास्तविक ज्ञान हो जाता है तो यही अंतिम मुक्ति है। प्रबुद्ध जनों को यह पूर्णता प्राप्त होती है जिसे जीवन्मुक्ति कहते हैं॥१२॥ एवं॥१३॥

एतौ बंधविमोक्षौ च परमेशस्वरूपतः।
न भिद्येते न भेदो हि तत्त्वतः परमेश्वरे॥१४॥

बंधन एवं मोक्ष के चक्र मात्र शिव के खेल हैं। ये चक्र शिव से अलग नहीं हैं क्योंकि भिन्नता की स्थितियाँ उदित ही नहीं हुई हैं। वास्तविकता में शिव को कुछ भी नहीं हुआ है॥१४॥

इत्थमिच्छाकलाज्ञानशक्तिशूलाम्बुजाश्रितः।
भैरवः सर्वभावानां स्वभावः परिशील्यते॥१५॥

इस तरह सारे जगत के सार, भगवान् भैरव ने अपने स्वभाव में तीन महान शक्तियाँ थाम रखी हैं, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति। ये तीन शक्तियाँ ही वह त्रिशूल है जो त्रिदल कमल है। इस कमल पर भगवान् भैरव विराजमान हैं जो एक सौ अठारह भुवनों के सार हैं॥१५॥

सुकुमारमतीञ्शिष्यान्प्रबोधयितुमञ्जसा।
इमेऽभिनवगुप्तेन श्लोकाः पञ्चदशोदिताः॥१६॥

मैं अभिनवगुप्त हूँ। ये छंद मेरे प्रिय शिष्यों के लिए हैं जिनके पास सीमित बुद्धिचातुर्य है। चूँकि ये शिष्य मुझ पर पूर्णतः समर्पित हैं अतः इनके सद्य कल्याण हेतु मैंने इन पंद्रह छंदों की रचना की है ॥१६॥

आगे व्याख्यानों में परमेश्वर परशिव को कहीं अन्य पुरुष एकवचन तो कहीं अन्य पुरुष बहुवचन के रूप में कहा गया है। परमेश्वर व्याकरण के वचनों, पुरुषों कालों तथा लिंगों से परे है तथापि वाणी की अपनी सीमा है, जिसके बाहर मात्र बोध है। माँ को कभी हम "आप" कभी "तुम" तो कभी "तू" कहते हैं वैसी ही स्वतंत्रता प्रेम एवं सम्मान के साथ परम सत्ता को संबोधन करते समय ली गयी है।

बोधपञ्चदशिका पाठ १

परिचय

आज दिनांक ३० नवम्बर २०१७ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम में आप सब का स्वागत है। अद्वैत की अवधारणा को ले कर जो आरंभिक कठिनाई होती है वह पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक कठिनाई है। हम एक द्वैतवादी संसार में हैं, लम्बे काल तक द्वैत में जीते हुए इस मनुष्य जन्म में आते हैं, और संसार की भी समस्त व्यवस्था द्वैत अर्थात तुम-मैं, अच्छा-बुरा, अपना-पराया, आदि पर टिकी होती है। संसार के स्वामी की धारणा भी पूज्य-पूजक, भगवान्-इंसान जैसे द्वैत जोड़ों पर आधारित होती है। प्रभु के अनुग्रह से कुछ को इस बात का अहसास होता है कि कुछ और है जो पूजा से आगे है, मंदिर से आगे है, ईश्वर की मूर्ति से आगे है और वह समस्त संसार को अपने आँचल में समेटता है। एक ऐसी अवधारणा जिसकी कल्पना करना कठिन होता है लेकिन जब हम ऋषियों के अन्तर्ज्ञान से प्राप्त बोध को जानते हैं तब सत्य के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होने लगती है, हम उस ज्ञान से प्रेम भी करने लगते हैं। साथ ही साथ सर्वोच्च सत्ता का प्रकाश हमारे हृदय में प्रबलता से प्रकट होने लगता है। तब लगता है कि इसी बोध के लिए हमने इतनी लम्बी यात्रा की, कई जन्मों से इसी ज्ञान की राह देख रहे थे। यही परमेश्वर का बोध है। सर्वोत्तम पुरुषार्थ जो हम इस जीवन में कर सकते हैं वह है परमेश्वर के बोध के लिए प्रयास। जब जिज्ञासा प्रबल होती है तो व्यक्ति अनुसन्धान करने लगता है और तब यह अहसास होता है कि परमेश्वर बाहर नहीं है, इन्द्रियों के पीछे है, इन्द्रियाँ बाहर देखती हैं लेकिन परमेश्वर की खोज उस खोजने वाले की खोज है। परमेश्वर का अस्तित्व एक पत्थर में भी उतना ही है और एक जीव में भी उतना ही है, एक मनुष्य में भी उतना ही है। परमेश्वर के अस्तित्व का मूल चेतना है। वैज्ञानिक, चेतना को भूल

कर जब विज्ञान के प्रयोग करते चले गये तो कहीं न कहीं बहुत बड़ी गलती पकड़ में आना ही थी। हम हजारों वर्षों से एक बहुत बड़ी गलती करते आये थे। विज्ञान के किसी भी प्रयोग में हमने अपनी चेतना को सम्मिलित नहीं किया था। चेतना को हाशिये पर रख कर प्रयोग करते चले गये, हम प्रेक्षक बन गये थे और संसार को देखते चले गये लेकिन जो प्रेक्षण की क्रिया है, ऑब्जरवेशन की क्रिया है वही अपने आप में परिणाम के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी है। किसी भी प्रयोग तंत्र में प्रयोगकर्त्ता ही सर्वोच्च है, वही प्रयोग का जनक है और वही परिणाम का जनक है क्योंकि समस्त संसार उसी की चेतना से उत्पन्न है। वह चाहे तो भी निर्लिप्त दर्शक बना नहीं रह सकता, वह तो प्रयोग का अभिन्न हिस्सा है! इस बात को समझने में सदियाँ बीत गयीं। तब शिव ने कुछ वैज्ञानिकों पर अनुग्रह किया, उनको प्रज्ञा दी जिससे उन्होंने संसार को अज्ञान से दूर किया, अन्य वैज्ञानिकों को अज्ञान और जड़ता से दूर किया जो मात्र जड़ संसार में ही विज्ञान का विकास करते आये थे। अब तक विज्ञान में जो सबसे बड़ी कमी थी वह यह थी कि विज्ञान में हमनें निश्चयात्मकता जोड़ दी थी। इसको अंग्रेजी में रेप्रोड्यूसिबिलिटी कहते हैं अर्थात एक ही परिणाम को एक निश्चित विधि से बार बार पाया जा सकता है। विज्ञान के जितने प्रयोग होते हैं उनमें जड़ नियम बना लिए गए थे, जैसे दो और दो जोड़ेंगे तो चार आएगा, इन्ही नियमों के अधीन विज्ञान चलता रहा। **नियमों की अधीनता शिव का स्वभाव नहीं है**, वह नियामक है, नियमों के अधीन नहीं रह सकता, नियमों के अधीन जड़ संसार रह सकता है, सीमित चेतना युक्त संसार भी कुछ नियमों का उल्लंघन करने में सक्षम है, इन बातों को हम बहुत आधारभूत उदाहरण से समझते हैं। अपने मित्र को एक थप्पड़ लगाओ, क्या अब पूर्वानुमान कर सकते हो कि परिणाम क्या होगा? क्या पहले से सोच सकते हो कि क्या होगा? हो सकता है कि वह दो थप्पड़ जड़ दे, हो सकता है कि वह नाराज हो कर चला जाये, हो सकता है कि हाथ पकड़ कर पूछे कि क्या बात है भाई आज नाराज क्यों हो? हमें कुछ पूर्वानुमान नहीं कि

वह क्या करेगा, वह जो करेगा वह उसकी इच्छा है और यही जीव का सीमित स्वातंत्र्य है। शिव के पास पूर्ण स्वतंत्रता है, ऐसा करने की, वैसा करने की, न करने की या अन्यथा करने की। जो एक प्रसिद्ध वाक्य है "कर्तुम अकर्तुम अन्यथा कर्तुम" अर्थात् परमेश्वर शिव ऐसा कर सकता है या हो सकता है ऐसा न करे, हम सोचें कि ऐसा नहीं तो वैसा करेंगा वह दोनों विकल्पों से परे नवीन विकल्प निर्मित कर लेता है जो हम कल्पना भी नहीं करते। हम इस संसार को नियमों में बांधना चाहते हैं ताकि हमारी मशीनें पूर्वनिर्धारित तरीके से अपना काम करें। नियमों से हमारा काम आसान हो जाता है। अगर आपका कंप्यूटर कभी दो और दो चार बताये, कभी दो और दो छः बताये तो आप उस मशीन को फेंक दोगे, लेकिन आपका मित्र आपके घर आने पर कभी आपकी तारीफ करे और कभी आपकी गलती निकाले तो आप क्या करोगे? अक्सर आप कहोगे यह मित्र मेरा हितैषी है अथवा आपकी स्वतंत्रता कि आप मित्र से कैसा व्यवहार करेंगे। अर्थात दोनों तरफ अनिश्चितता है। चेतन जगत में एक ही क्रिया के विभिन्न परिणाम हो सकते हैं। पारंपरिक विज्ञान में तो जड़ संसार है, वह नियम में बंधने को राजी है, एक पत्थर में स्वतंत्रता नहीं है कि उसको फेंका जाये और वह दूर जाने से मना कर दे। ठीक गणित लगा कर भेजो तो मंगलयान मंगल ग्रह तक जायेगा यह उसकी विवशता है, क्योंकि वह जड़ संसार का हिस्सा है। लेकिन चेतन संसार पर प्रयोग करके देखो, उसमें किसी भी तरह का पूर्वानुमान लगाना संभव ही नहीं है। ये बातें अंततः वैज्ञानिक प्रयोगों में आने लगीं, और आना ही थीं, किसी न किसी दिन तो होना ही था। क्योंकि हम चेतना को भूल कर विज्ञान के प्रयोग कर रहे थे। किसी न किसी दिन तो ऐसा होना ही था, और तभी पकड़ में आया कि विज्ञान में प्रतीत होने वाली निश्चतता छलावा है। नील बोहर, हिस्सिंबर्ग, श्रोदिन्जर और कई अन्य वैज्ञानिक थे जिन्होंने विज्ञान में एक क्रांति ला दी, क्वांटम भौतिकी का विकास किया, उसको करीब १ सदी हो गयी। १ सदी में कितने ही प्रयोग हुए लेकिन वह सिद्धांत अपनी जगह अटल

रहा। उसके पीछे कारण था परमेश्वर का स्वातंत्र्य, जिसको स्वातंत्र्य शक्ति कहते हैं, वही स्वातंत्र्य शक्ति यहाँ पारिलक्षित होती है, जिसको अनिश्चतता का सिद्धांत कहते हैं। जड़ संसार तो अनिश्चितता पैदा कर ही नहीं सकता उसमें अनिश्चितता पैदा करने की स्वतंत्रता नहीं है, लेकिन यह बात भी वृहद पिंडों पर ही लागू होती है, सूक्ष्म परा परमाणविक कणों के स्तर पर तो प्रखर अनिश्चितता विद्यमान है। ***संभवतः इस अतिसूक्ष्म स्तर पर जड़ चेतन का भेद समाप्त हो जाता है***। चेतन संसार का व्यवहार स्वातंत्र्य के कारण अनिश्चित है। एक कार जा रही है, उसके बारे में आप यह नहीं कह सकते कि अगले चौराहे पर यह बाएं मुड़ेगी या दाहिने मुड़ेगी, उसके अन्दर एक चेतन नियंत्रक बैठा है। बाएं मुड़ते मुड़ते उसका मन बदल जाये तो दायें मुड़ जायेगा, क्योंकि वह सीमित स्वातंत्र्य का स्वामी है। इसकी तुलना में सांख्यिकी के पूर्वानुमान अधिक सटीक होते हैं जैसे किसी चौराहे से प्रतिदिन १००० कारें गुजरती हैं, इनमें से २० प्रतिशत कारें दायें मुड़ती हैं, २० प्रतिशत बाएं मुड़ती हैं और ६० प्रतिशत सीधे चली जाती हैं। ऐसे आकड़े कमोबेश स्थिर बने रहते हैं लेकिन किसी एक कार के बारे में पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। मनुष्य के पास जो स्वतंत्रता है वह सीमित स्वतन्त्रता है। वह सापेक्षिक रूप से स्वतन्त्र है याने आप चाहो तो भी आप एकसाथ दो जगह नहीं हो सकते, आप चाहो तो भी आप १० फीट ऊँचे नहीं हो सकते, अगर वृद्ध हो गये हो तो युवा नहीं हो सकते। अर्थात् स्वातंत्र्य तो है लेकिन सीमित स्वातंत्र्य है और ये सीमायें ही कंचुक हैं। हमारी सीमायें हैं जिन सीमाओं के बाहर हम नहीं जा सकते। यह शिव का खेल है, हम सब मोहरे की तरह हैं, शिव ने हमको अच्छी तरह छला है। जिस दिन हम जान जायेंगे कि हम छले जा रहे हैं तो हमको कुछ भी नहीं करना है। लेकिन दिक्कत ये है कि हमें इस बात का अनुमान भी नहीं है कि हम छले जा रहे हैं। अज्ञान का अज्ञान शुद्ध अज्ञान है। छले इसलिए जा रहे हैं क्योंकि हमने छला जाना स्वीकार किया है। हममें सीमायें स्वीकार करने की कोई मजबूरी नहीं है, हम समस्त नियमों के

नियामक हैं लेकिन हम अपने स्वरूप को न जान कर माया शक्ति के अधीन जिन्दगी जीते चले जा रहे हैं। माया स्वातंत्र्य शक्ति का ही एक स्वरूप है, उस स्वरूप के अंतर्गत मात्र संसार को चलाने का खेल चल रहा है। जैसे एक व्यक्ति है वह कहता है कि मुझे अब यह काम करना है, फिर मुझे बेटे की शादी करना है, अब मुझे दुकान ठीक करना है, अब मुझे एक मकान बनवाना है, अब मुझे कार खरीदना है, अब मुझे विदेश यात्रा करना है, अब मुझे तीर्थ यात्रा करना है। यह इन्सान की संसारी दौड़ है, माया आपको लगातार छलती है, लगातार आपको उस दिशा में जाने से रोकती है जो आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। हम लगातार विपरीत दिशा में जाते हैं, इसी माया की वजह से। संसार के खेल में और थोड़ा इकट्ठा कर लें, और थोड़ा भोग लें, और थोड़ा प्रतिष्ठा बढ़ा लें, और थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लें। हमारी ये दौड़ कभी समाप्त नहीं होगी और यही बहुत बड़ा छल है। इस छल में बड़ी मजेदार बात यह है कि जो छला जा रहा है अपने आप को खिलाड़ी समझता है! वह समझता है कि मैं तो बहुत बड़ा खिलाड़ी हूँ, कितने ही को मैंने पछाड़ दिया, कितने ही लोगो को मैंने धूल चटा दी, कितने ही प्रतिस्पर्धी आये एक भी मेरे सामने नहीं टिका। वह संसार की दिशा में तेजी से भागे चला जा रहा है। **इससे बड़ा अज्ञान क्या हो सकता है कि वह गेंद की तरह खेला जा रहा है और स्वयं को खिलाड़ी समझ रहा है। "शुद्ध अज्ञान परमेश्वर को न जानना नहीं है" वरन "मैं परमेश्वर को नहीं जानता" यह भी वह नहीं जानता"** वह समझता है कि मैं सब कुछ जानता हूँ, मैं तो खिलाड़ी हूँ, "अज्ञान का अज्ञान शुद्ध अज्ञान कहलाता है"। जो आपको कह रहा हूँ, यह भूमिका है उस बात की जो हम समझने जा रहे हैं। आज हमने एक छोटा सा साहित्य चुना है जिसका हम अगले कुछ सप्ताह चिंतन करेंगे जिसका नाम है बोधपञ्चदशिका। इसे अभिनवगुप्तजी ने लगभग एक हजार वर्षों पूर्व लिखा था। इसमें पंद्रह श्लोक हैं। उन्होंने अंत में लिखा है कि मैं अभिनवगुप्त हूँ और मैंने ये १५ छंद मेरे उन शिष्यों के लिए लिखे हैं जो सीमित बुद्धि रखते हैं, जिनका

बुद्धिचातुर्य सीमित है लेकिन ये मुझ पर पूर्ण विश्वास और समर्पण रखते हैं। उनके सद्य कल्याण के लिए मतलब एकाएक बिना देर किये हुए उनके कल्याण के लिए मैंने पंद्रह छंदों की रचना की है। ये पंद्रह छंद अपने आप में पूर्ण अद्वैत शैव दर्शन का सार हैं। यह उन लोगों के लिए है जो समर्पित भाव से शुद्ध ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं। जहाँ समर्पण की कमी है वहाँ ये हमको कुछ भी समझ में नहीं आयेगा क्योंकि समर्पण का मतलब होता है हृदय को खाली करना, मन को कचरे से मुक्त कर देना। हम सोचते हैं हमको बहुत ज्ञान है और जो थोड़ा सा ज्ञान है वह अधिकतर संसार का ज्ञान है, लेकिन कभी कभी हमको इस बात का बड़ा भ्रम हो जाता है कि हमको भगवान् के बारे में बहुत कुछ मालूम है, अध्यात्म के बारे में भी बहुत कुछ मालूम है। ऐसे सज्जन को ज्ञान देने में दोहरी समस्या है, पहले तो सड़क को तोड़ना है उसके बाद में नई सड़क बनाना है। खाली जंगल में नयी सड़क बनाना आसान है पर एक गलत बनी हुई सड़क को तोड़ कर फिर नई सड़क बनाना बड़ा कठिन काम है और जब हम उसी के ऊपर सड़क बनाने की कोशिश करते है तो मजबूत सड़क बन ही नहीं पाती। इसलिए जो धर्मध्वजी है, जो धर्म के बारे में जानकार है, "मैं धार्मिक हूँ" यह सोच कर बैठा है, उसके लिए बोधपञ्चदशिका से बोध पाना कठिन है। कोई यह सोच ले कि मैं पूरी तरह अधार्मिक हूँ, पूरी तरह से नास्तिक हूँ, वह भी इसे समझ सकता है क्योंकि उसका दिमाग खाली है वह पूरा खाली कटोरा लेकर आया है कि मुझे भगवान् के बारे में कुछ नहीं मालूम, मैं तो मानता ही नहीं भगवान् हैं भी! आप बताओ क्या है भगवान्? जब वह खाली दिमाग वाला बोधपञ्चदशिका समझेगा तो इन पंद्रह श्लोकों में उसे पूरी तरह से बोध हो सकता है। समस्या तभी आयेगी जब हम कहेंगे हाँ हमको बहुत ज्ञान है। फिर बड़ी मुश्किल है। नास्तिक में झूठे आस्तिक से कहीं बेहतर गुण हैं। नास्तिक व्यक्ति ईश्वर सम्बन्धी पूर्वाग्रह से मुक्त है। हम उस व्यक्ति के सामने ईश्वर का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करेंगे तो बड़ी आसानी से ग्रहण कर सकता है। बहुत संभव है कि वह बहुत कुछ का

अतिक्रमण कर जायेगा, लेकिन अगर वह कोई पहले से ज्ञान के अहंकार में डूबा हुआ है तो वह नास्तिक से भी ज्यादा निचले स्तर पर है, क्योंकि इस स्थिति में उसको पहले तो जो सीख रखा है उसको भुलना जरूरी है, उसके बाद उसकी बोध प्रक्रिया शुरू हो सकती है। बोधपञ्चदशिका एक लक्ष्य निर्धारित कर देती है। जैसे आप किसी तीर्थ में जा रहे हैं तो आप पहले से सोच लेते हैं, ये वाली गाड़ी पकड़ूँगा, यहाँ गाड़ी बदलूँगा, यहाँ पर ठहरूंगा। हम दिमाग में ईश्वरीय मार्ग की एक योजना बना लेते हैं। फिर **सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।** उसके बाद तो परमेश्वर का अनुग्रह है, परमेश्वर जिस पर अनुग्रह करेगा उसके हृदयमें ठीक ठीक वैसे उतर जायेगा जैसे सही ताले में सही चाबी! उसकी ग्रंथियाँ खुलने में अधिक देर नहीं लगेगी। यहाँ यह जानना रोचक है कि ईशकृपा, गुरुकृपा तथा आत्मकृपा पर्यायवाची हैं, गुरु परमेश्वर का मूर्तरूप है तो आत्म रूप से आप स्वयं परमेश्वर हो। हमारी ग्रंथियों के ताले कभी कभी ऐसे जंग खाए हुए होते हैं जो हजारों वर्षों से उनको किसी ने खोला ही नहीं। खोलना बड़ा मुश्किल हो जाता है। लेकिन सही चाबी हो और साथ ही साथ गुरु की अनुकम्पा का स्नेहक हो तब ताला आसानी से खुल जाता है। परमेश्वर की अवधारणा में और संसार की अवधारणा में कुछ मूलभूत अंतर है। संसार की जो हमारी अवधारणा है उसमें अनगिनत भिन्नतायें हैं, उसमें कुछ अपने हैं, पराये हैं, सुन्दर हैं, कुरूप हैं और न जाने कितनी भिन्नतायें हैं। विचारों में दूरियाँ हैं, नजदीकियाँ हैं, भविष्य, भूत, वर्तमान हैं। इसी तरह सारे ब्रह्माण्ड की विभिन्नतायें उसमें समायी हुई हैं। शिव या परमेश्वर की जो अवधारणा है उसमें बिंदु स्वरूपता या शून्य स्वरूपता है, जिसमे न तो लम्बाई है, न चौड़ाई है, न भूत, भविष्य या वर्तमान का भेद है, ये सभी भेद उसके उदर में समाये हुये हैं। जैसे हम कहें कि भगवान् स्वर्ग में बैठा है तो ऐसा संभव नहीं है, अगर हम अंतर्चिंतन करें कि हम क्या हैं? कि इस मिट्टी के अन्दर ऐसा क्या है, कौन है जो इसके अन्दर बैठकर बोल रहा है, कौन है जो इतना स्वतंत्र है कि इच्छा हो वह कर लेता है, कहता है

आज चलो यहाँ चलते हैं फिर थोड़ी देर बाद कहता है नहीं चलते। ये स्वतंत्रता किसकी है? इस स्वतंत्रता का सार क्या है? उसका उद्गम क्या है? इस स्वतंत्रता का स्रोत क्या है? कहाँ से यह स्वतंत्रता पैदा होती है? मैं एकाएक कुछ करने जाता हूँ तो फिर अपने आपको रोक लेता हूँ, नहीं नहीं यह नहीं करते, रहने दो बाद में देखेंगे। यह कौन है जो अन्दर बैठा है, इसके स्वरूप को समझना ही शिव को समझना है। संसार को छोड़कर भगवान् को नहीं समझा जा सकता। पहली बात तो संसार को छोड़ना संभव नहीं है। पलायनवादी कभी परमेश्वर को प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि पलायन करके जायेगा कहाँ? अगर परमेश्वर के बोध की इच्छा है, तो उसे इस संसार में रहकर ही, इस संसार को प्रेम करते हुए, शिवदृष्टि का विकास करना जरूरी है। अगर तुम भागकर जंगल चले गये, पहाड़ पर चले गये, गुफा में छिप गये तो उससे परमेश्वर का बोध होना संभव नहीं क्योंकि वहाँ पर जाना और यहाँ पर रहना बराबर की बात है। गुफा में भी उतना ही शिव है जितना यहाँ पर है, पहाड़ पर भी उतना ही है जितना आपके घर पर, जंगल में भी उतना ही है जितना मंदिर में। महत्व इस बात का नहीं है कि आप कहाँ रहते हो, महत्व इस बात का है कि आपकी प्रतिबद्धता कितनी है, आपकी दृष्टि क्या है, आप नयी बात को स्वीकार करने के प्रति कितने खुले दिमाग के हो? चिंतन से दृष्टि बनती है और दृष्टि विचारों से भी ऊपर होती है। दृष्टि का मतलब आप जिस चश्मे से संसार को देखते हो। सारा संसार और परमेश्वर दोनों पर्यायवाची हैं, इस बात को जब तक हम हृदय में नहीं समझेंगे तब तक ईश्वर के अस्तित्व को समझना कठिन है, क्योंकि ईश्वर को हम अलग और संसार को अलग समझते हैं। सोचते हैं कि संसार को छोड़ो ईश्वर मिल जायेगा। सबसे पहली बात तो ये है कि छोड़ना या पकड़ना कुछ भी नहीं है, दृष्टि बदलना है और जो दौड़ है वह मोह की दौड़ है, उस मोह को पहचानना है। संसार में कुछ भी नहीं छोड़ना है न आपको पत्नी को छोड़ना है, न बच्चों को छोड़ना है, न घर को छोड़ना है, न आपको अच्छा भोजन छोड़ना है, वरन उस दौड़ को जानना है जिस दौड़ में

आप अनजाने भी शामिल हो जाते हो। इस तरह से जब आप संसार को परमेश्वर स्वरूप, परमेश्वर का विकास समझते हो तभी आपको शिवदृष्टि विकसित हो सकती है। अब अगर इसके लिए हमको शुरुआत करनी है तो एक निर्मल दृष्टि का विकास बोधपञ्चदशिका करती है। तर्कसंगत रूप से परमेश्वर को समझने में यह बोधपञ्चदशिका आपके काम को और आसान कर देगी। अगर कुतर्क करते हैं, हर जगह अपनी सांसारिक बुद्धि लगाते हैं, ज्ञान बघारते हैं तो यह बोधपञ्चदशिका आपके किसी काम की नहीं। तर्क दो तरह के होते हैं, एक वह तर्क होता है जो तार्किकता देता है, सत्तर्क से परमेश्वर की समझ विकसित होती है, परमेश्वर को जानने की योग्यता मिलती है। कुतर्क में और तार्किकता में मूलभूत अंतर है, कुतर्क हमारे अधूरे ज्ञान को बीच बीच में लाता है और तार्किकता में पूर्ण प्रतिबद्धता होती है, पूर्ण समर्पण होता है और सत्य के प्रति पूर्ण प्रेम होता है, किसी तरह का पूर्वाग्रह नहीं होता। पूर्वाग्रह सत्य से दूर ले जाता है। समर्पण परमेश्वर के पास ले जाता है। हम अपने शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार के स्वामी हैं, यह चिंतन अपने अन्दर सतत करना है। स्वयं में ग्राहकता का विकास आवश्यक है। संसार नहीं छोड़ना है, उसके स्वरूप को त्यागने की जरूरत नहीं, आप जहाँ रहते हैं वहाँ रहो, आप जैसा भोजन करते हो करते रहो, जिसकी पूजा करते हो करते रहो, नहीं करते हो तो मत करो, अगर मंदिर जाते हो तो जाओ नहीं जाते हो तो मत जाओ। जाने से कोई हानि नहीं और न जाने से भी कोई हानि नहीं। छोड़ना जरूरी नहीं और जाना भी जरूरी नहीं, ये सब बातें गौण हैं। महत्वपूर्ण है अपने अन्दर ग्राहकता उत्पन्न करना, मन की सरलता को बढ़ाना, मन की कलुषिता को पहचानना। हमारे हृदय में बहुत सारी घृणा ईर्ष्या भरी होती है, किसी के बारे में हमारी पूर्वाग्रही धारणा है कि यह अच्छा इन्सान नहीं है। किसी धर्म सम्प्रदाय या किन्ही धर्मानुयायियों के प्रति भी हमारे पूर्वाग्रह होते हैं कि ये लोग बुरे हैं। इन मान्यताओं को त्यागना है। इस बारे में सार रूप से हमको शिवसूत्र में समझाया गया है "विस्मयोयोग भूमिकाः"। योगी याने कि वह

साधक जो परमेश्वर के बोध को पा चुका है उसकी पहचान है विस्मय। आप एक अहंकारी व्यक्ति को खूब बढ़िया सुन्दर कोई वस्तु बताओ तो भी उसके एंगल ऑफ़ माउथ नीचे घूमे रहेंगे, उसके चेहरे पर मुस्कराहट नहीं आयेगी, उसके चेहरे पर वह आनंद और विस्मय का भाव नहीं आयेगा। आनंद और विस्मय योगी का पहला लक्षण है। वह बच्चों की तरह आनंदित और विस्मय से भरा होता है। संस्कृत में विस्मय का मतलब है नितनवीन आनंद जिसमें आश्चर्य भी और आनंद या ख़ुशी भी समायी है। योगी इस संसार में आनंद मिश्रित आश्चर्य से सतत सराबोर रहता है। उसके लिए हर नया दिन नवीन आनंद लाता है। पक्षियों को चहचहाते हुए देखता है तो उसमें खूब आनंद आता है, नीरव आसमान देखता है तो उसमें बड़ा आनंद आता है, उसमें शिव की विशालता दिखाई देती है। पुष्पों में उसको शिव का सौन्दर्य दिखाई देता है, यह कौन चित्रकार है जो तितलियों के पंखों पर भी चित्रकारी कर देता है। पक्षियों की चहकने के शोर में उसे अंतर्नाद सुनाई देता है, बरसात की बूंदों में उसको शिव का नृत्य दिखाई देता है। उसके हृदय में आनंद ही आनंद भरा हुआ है। वह जो कुछ भी देखता है उसे आनंद से भर देता है। वह किसी के घर जाता है और बहुत सुन्दर मकान देखता है तो आनंद से भर जाता है, शिव ने कितना सुन्दर रूप रखा है, बाहर बगीचा है, स्विमिंग पुल है, कितने सुन्दर कालीन रखे हैं, मधुर संगीत बज रहा है, कितना अच्छा फर्निचर है! सामान्य व्यक्ति ईर्ष्या से भर जाता है, इसने इतना सारा धन कैसे कमा लिया? इतने सारे पैसे कहाँ से ले आया? पक्का इसने बेईमानी की होगी, योगी को इस सब से कुछ लेना देना नहीं, योगी को तो आनंद से सरोकार है, उसको वहाँ हर वस्तु में आनंद ही आनंद दिखाई देता है। वह जहाँ देखता है उसमें शिव के सौन्दर्य को तलाश लेता है। और यह सबसे बड़ा गुण तभी आता है जब उसकी मुस्कराहट उसको कभी नहीं छोड़ती। वह हमेशा मुस्कराता रहता है, हमेशा प्रसन्नचित रहता है, आनंदित रहता है। यह गुण तभी आता है जब हृदय में समर्पण हो। थोड़ा सा भी अहंकार आनंद को छीन लेता है, आदमी

गुस्से में दिखता है, तनावग्रस्त दिखता है। कई लोग ऐसे प्रकट करते हैं जैसे बहुत धार्मिक हों, लेकिन लोगों को उनके चेहरे से डर लगता है। बच्चे भी जिसे प्यार कर सकें, उसके विरोधी भी उसे प्यार कर सकें, प्रतिस्पर्धी भी उसको प्यार कर सकें, ऐसा योगी का स्वभाव होता है। योगी के अपने आसपास का जो प्रभामंडल है, उसमें कोई तनाव में नहीं होता, उस प्रभामंडल के आसपास जो होता है उसके तनाव दूर हो जाते हैं। इस तरह से चेहरे पर मुस्कराहट और हृदय में शांति ही नहीं बल्कि प्रसन्नता भी हो, दूसरो के प्रति सौहार्द हो, देखने का एक प्रेमपूर्ण नजरिया हो। एक व्यक्ति का अपराध सिद्ध हो गया है, अगर आप न्यायाधीश हैं तो आपकी सामाजिक जिम्मेदारी है कि सजा दोगे। ऐसी जिम्मेदारियों को निभाते हुए योगी के हृदय में यह भी आता है कि इसकी नजर से भी तो दुनिया देखूं, वह क्या था जिन क्षणों में उसने अपराध किया? अपने आप को अपराधी होना स्वीकार किया? शिव स्वयं की नजर से नहीं देखता, शिव असंख्य नजरों से संसार को देखता है, यही शिवदृष्टि है। योगी भी सबकी नजर से दुनिया को देखता है। हमारे आश्रम की एक प्रार्थना है, हर बार हम कहते हैं "परमेश्वर मुझे वह दृष्टि दे जिस दृष्टि से तू इस सृष्टि को देखता है"। मुझे वह नजर दे ताकि जैसे मैं अपने शरीर के भिन्न भिन्न अंगो को महसूस करता हूँ वैसे ही मेरे हृदय में संसार के प्रति ऐसी दृष्टि हो जैसे सब कुछ मेरे अंग हैं, मुझसे अलग कुछ नहीं है, सब मेरे अपने हैं, वह दृष्टि परमेश्वर की दृष्टि है। व्यवहार दर्शन और ज्ञान दोनों साथ साथ चल सकते हैं। कभी कभी इस बारे में भ्रम पैदा हो जाता है कि अगर ऐसा होगा कि सब मेरे अपने है तो मैं किसी को सजा देनी होगी तो कैसे दूंगा? कोई दुष्ट होगा तो क्या उसका प्रतिकार नहीं करूंगा? असामाजिक तत्त्व का प्रतिकार भी करना है, पत्नी बीमार है तो उसका इलाज भी करवाना है। जब आप चुनाव लड़ रहे हों तो चुनाव में विरोधी के खिलाफ प्रचार भी करना है लेकिन विरोधी की दृष्टि से भी संसार को देखना है। याने आपके भीतर एक दिव्य संसार की सृष्टि हो जाएगी, एक दिव्य प्रेम का प्रकाश

प्रकट हो जायेगा। यह प्रकाश तो सतत प्रकाशित हो रहा है, उसके आसपास हमने कालिख पोत दी है। एक ऐसी कालिख जिसमे घृणा है, ईर्ष्या है, किसी समुदाय के प्रति वैमनस्य है और इतनी सारी कालिख है उसके ऊपर कि वह प्रकाश अपने आप में सीमित हो गया, उस प्रकाश का कुछ नहीं बिगड़ा, बादलों से सूर्य का कुछ नहीं बिगड़ता, बिगड़ेगा तो हमारा। प्रकाश और अन्धकार एकसाथ तो रह नहीं सकते, जहाँ दिव्य प्रेम है वहाँ विपरीत मनोवृत्तियों के लिए जगह ही नहीं होती। फिर आगे बड़ी सुन्दर बात, हम कहते हैं कि हमको शिव ने छला, अगर जब वास्तव में तुम्ही शिव हो तो अपने आपको छल रहे हो। छलने वाला अगर कहीं आसमान में बैठा हो तो तुम जिन्दगी भर इस तड़प से बाहर नहीं निकल सकते थे, वह इतनी दूर बैठकर अगर तुमको वह छल सकता है तो तुम कैसे उसके छल से बाहर निकल पाते, कैसे उसके चुंगल से बाहर आ पाते, चूँकि छलने वाले हम स्वयं ही हैं, इसलिए हम अपने आपको मुक्त भी कर सकते हैं। और मुक्त होते ही हम सम्राट हैं। संसार के प्रति दृष्टि बदलें, हृदय के भीतर का वातावरण सुगंधित, शांत, प्रसन्नचित्त, जैसा हमारा मंदिर का वातावरण होता है वैसा वातावरण हमारे अन्दर पैदा हो जाये फिर हमको मंदिर जाने की जरूरत नहीं। मंदिर वह प्रतीक है जो यह बताता है कि इस वातावरण की आपके भीतर जरूरत है। वहाँ पर जब धूप दीप जलते हैं, हल्की हल्की सी घंटिया बजती हैं, गुनगुनाहट होती है तो वहाँ पर जो वातावरण में सौम्यता प्रदर्शित होती है, एक सुन्दरता, एक शालीनता प्रदर्शित होती है वह शालीनता, सौम्यता, सुन्दरता, प्रेम, आनंद वैसा वातावरण हमारे भीतर प्रकट हो जाये, यही मंदिर की उपयोगिता है। पूजा भी क्यों है? पूजा कृतज्ञता उत्पन्न करती है, यह धन्यवाद का प्रतीक है। यही पूजा अहंकार का कारण बन जाये तो फिर क्या करें? घर के दीपक से आग लग जाये तो फिर क्या करें? हम जिन साधनों के द्वारा परमेश्वर को पाना चाहते हैं वे साधन ही हमको परमेश्वर से दूर ले जाने का कारण बन जाते हैं। पूजा ही अगर हमको ईश्वर से दूर ले जाये और अहंकार का

कारण बन तो कैसी विडम्बना है! हम कह देते हैं हम फलाने हैं, हम फलाने मार्गी हैं, हम उनसे उच्चतर हैं। हमारी दृष्टि सही है तो हमारे भीतर एक ऐसा वातावरण पैदा हो जाता है जो पूर्ण संसार को अपने प्रेम के आंचल में लेने के लिए तत्पर है, वहाँ अपना पराया कोई नहीं है। हमारा पहला कर्त्तव्य है अपने हृदयको खाली करना, कचरा खाली कर देना, मन को शांत सरल बना देना क्योंकि मन ही आपको कठिन बना देता है। मन की कामना होती है कि यह भी कर लें, वह भी कर लें, ये भी पा लें, इसको भी संरक्षित कर लें। हम दूसरों को देख कर अपने लक्ष्य तय करते हैं। हम अपने आप के भीतर झाकेंगे तो मालूम पड़ेगा कि जिस जगह को मंदिर बनाना है वह कबाड़खाना बन गया है। ज्ञान के लिए मात्र एक अर्हता है हमारे हृदय की ऋजुता, सरलता और प्रसन्न रहने की प्रवृत्ति। प्रसन्न हृदय से ही कलुषता दूर होती है। प्रसन्नता के रास्ते अन्दर की गंदगी बाहर निकल जाती है। प्रसन्न रहने का प्रयास करें, जब कोई हमको परेशान करता है, जब हमको कोई चिढ़ाता है, जब कोई हमारे मन के खिलाफ बात करता है या मन के खिलाफ व्यवहार करता है उस समय हमारी क्षणिक परीक्षा हो जाती है। यह प्रतिदिन होता है, कोई एक दिन की बात नहीं। जब हम उस परीक्षा में असफल हो जाते हैं, हमारे अन्दर ढेर सारा कचरा इकट्ठा हो जाता है, चिढ़ आने लगती है सोचते हैं इसको कैसे जवाब दें, इसको भी बता देंगे और तुरंत हम षड्यंत्र करने को तैयार हो जाते हैं। जो योगी होता है वह चिढ़ने के बजाय अन्तर्दृष्टि से स्वयं को देखने लगता है, कि इसकी दृष्टि में मैं क्या हूँ और कहाँ खड़ा हूँ और ऐसा क्यों? क्योंकि जब हम दूसरे की दृष्टि से स्वयं को देखते हैं तभी हम स्वयं का आकलन कर पाते हैं। अंग्रेजी में एक कहावत है you cannot see the picture if you are in the frame अगर आप स्वयं फ्रेम में हो तो चित्र कैसे देखोगे? क्योंकि चित्र को देखना है तो फ्रेम के बाहर आना पड़ेगा। हम इस शरीर की फ्रेम के अन्दर हैं, हम अपने आप को नहीं पहचान पा रहे हैं इसलिए हम दूसरों की दृष्टि से देखें, इसलिए हमारे प्रतिस्पर्धी, हमारे

आलोचक हमारा आईना हैं जो हमको बताते हैं कि हम कहा खड़े हैं, प्रतिदिन होने वाली परीक्षा का एक अवसर की तरह उपयोग कर सकते हैं। बोधपञ्चदशिका का अध्ययन हम अगले सप्ताह से करेंगे। क्रमबद्ध १५ सूत्र हैं। ईश्वर प्रत्यभिज्ञा जो एक गूढ़ विषय है। उसको समझने के लिए पहले इसको समझना हमारे लिए एक बहुत बड़ी पूर्व तैयारी हो जायेगी। गुरु नारायण ....

बोधपञ्चदशिका पाठ २

आज दिनांक ७ दिसम्बर २०१७ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। बोधपञ्चदशिका के १५ श्लोक हैं, यह आचार्य अभिनवगुप्तजी की रचना है, जिनका जीवनकाल दसवीं सदी के अंत और ग्यारहवीं सदी के आरम्भ का है। यहाँ आश्रम में जो पिछले आठ वर्षों में परंपरा विकसित हुई है उसमें हम ज्ञान के सर्वोच्च स्तर पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं, इसमे जटिलतायें बहुत कम हैं। निश्चय ही अद्वैत भावना को समझने में कठिनाइयाँ हैं। ईश्वर को समझना इतना कठिन नहीं है जितना हमें लगता है क्योंकि हमारे जो वर्षों के बने हुए, कई जन्मों के बने हुए संस्कार हैं, वे इस समझ में कठिनाइयाँ पैदा करते हैं, समझने से रोकते हैं। आपको स्मरण होगा जब हमने विज्ञान भैरव पढ़ा था, वहाँ शिव - पार्वती संवाद में शिवजी ने कहा था कि जो विभिन्न प्रकार की उपचारों से पूजा अर्चना या अनुष्ठान हैं वे सब वैसे ही हैं जैसे बच्चे को कड़वी दवा पिलाने के लिये हम उसको मिठाई की लालच देते हैं। हमको पांडित्य में कोई रुचि नहीं है। न हमें किसी विद्वत्ता के प्रदर्शन करने की चाह है। हमारी चाह है कि हमारे हृदय में ज्ञान का अवतरण हो सके जो हमारे हृदय को मंदिर बना दे, जहाँ स्थाई रूप से परम शिव निवास करें। हमारे भीतर का वातावरण निर्मल हो सके इसलिए हम उस बोध के आकांक्षी हैं। बोधपञ्चदशिका के पंद्रह सूत्र अभिनवगुप्तजी ने अपने जीवन भर के अनुभवों से

सार रूप में लिखे जिससे उन्होंने त्रिक दर्शन का सार समझा दिया। अब उसका अध्ययन आज से शुरू करते हैं।

पहला सूत्र कहता है "उसका प्रकाश", 'उसका' अर्थात परशिव का जिसको जानने का हम प्रयास कर रहे हैं, **"उसका प्रकाश किसी बाहरी प्रकाश अथवा अंधकार से आवृत्त नहीं किया जा सकता, समस्त प्रकाश एवं अंधकार सर्वोच्च चेतना में ही समाहित है"।** यह छोटा सा सूत्र अपने में गहरा मतलब समाये हुए है। हम प्रकाश से सामान्यतः मतलब निकालते हैं 'बाहर से आने वाला प्रकाश' जिसको हम प्रकाश कहते हैं, यह उस प्रकाश की बात नहीं है। अगर चिंतन करें कि परमेश्वर क्या है और कैसा है? तो उसके स्वरूप में दो ही पहलु ऋषियों के ध्यान में आते हैं - प्रकाश और विमर्श। ये परशिव के दो पहलु हैं। जो विमर्श है वह उसकी शक्ति है और जो प्रकाश है उसका अस्तित्व है। अस्तित्व और शक्ति दोनों ही मिलकर उसे वह पहचान देते हैं जो वह है। परमेश्वर जैसा है उसके लिए उसके दोनों पहलु अनिवार्य हैं। उसके पास शक्ति भी अनिवार्य है और उसका अस्तित्व भी। हम कहते हैं 'उसका अस्तित्व' 'उसकी शक्ति'! चूँकि हमारी भाषा की सीमा है इसलिए हमको द्वैतवादी भाषा का उपयोग करना पड़ता है। सचमुच में दोनों में कोई भेद नहीं है, हमारा अस्तित्व और हमारी शक्ति, शिव का अस्तित्व और शिव की शक्ति या एक दीपक जल रहा है उसकी लौ और उसके प्रकाश में कोई भेद नहीं है। जैसे लहरों को जल से अलग नहीं कर सकते ऐसे ही शिव और शक्ति दोनों अभिन्न रूप से एक हैं, दोनों में कोई तात्विक भेद नहीं है। हम समझने के लिए उन दोनों को अलग अलग कर देंगे लेकिन दोनों मूलरूप से एक हैं। प्रकाश उसका अस्तित्व स्वरूप है और अस्तित्व जो शब्द है इसका हम चिंतन करें तो संसार में जो कुछ अस्तित्व है, एक शब्द का एक विचार का, एक विचारधारा का, एक पत्थर का, एक व्यक्ति का, भिन्न भिन्न धर्मों का, इन सबका जो अस्तित्व है वही परशिव है, याने सार्वभौम अस्तित्व, सबका सार अस्तित्व। अगर हम कहें

कि यह मिट्टी क्या है? उसका सार हम खोजें उसका अनुसंधान करें कि वह कहाँ से आयी, उसका स्रोत क्या है, चाहे पत्थर के बारे में अनुसन्धान करें कि यह कहाँ से आया इसका आदिस्रोत क्या है, चाहे हम एक विचार के बारे में अनुसंधान करें कि विचार कहाँ से आया? प्रत्येक अनुसन्धान अपने स्रोत को खोजते खोजते सर्वोच्च चेतना पर पहुँच जायेगा, उसका नाम हम कुछ भी दे सकते हैं - उसको शिव चेतना बोलें, सार्वभौम ईश्वर चेतना बोलें। अपनी रुचि से आप उसे कोई भी नाम दे सकते हैं। लेकिन हम यहाँ पर उसको परशिव बोलते हैं। परशिव पर जाकर वह खोज रुक जायेगी। हम कहें कि हमारे पिता कौन, उनके पिता कौन, फिर उनके पिता कौन, दो चार पीढ़ी तो हर व्यक्ति को याद रहती है कि मेरे पिताजी का नाम ये है फिर दादाजी का नाम ये है और फिर उनके पिताजी ये थे किसी किसी को और एक दो पीढ़ी याद रह जायेगी उसके बाद में हमको कुछ नहीं मालूम लेकिन अगर हम मनन करें कि पिता के पिता के पिता के पिता के पिता आखिर ये श्रृंखला कहीं तो जाकर अंत होगी जो सबका पिता है, जिसका कोई पिता नहीं है, वह ही परमशिव परमपिता है। शिव से एक किरण चली है जो हम तक आती है। अगर हम उसको खोजने जाएँ कि ये कहाँ से आ रही है और उसके विपरीत दिशा में जब चलेंगे तो उसके स्रोत पर पहुँच जायेंगे। उसे इसीलिए प्रकाश कहते हैं क्योंकि वह सबका जनक है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, अथवा आकाश इन पंच महाभूतों के अलावा भी जो हमारे विचार हैं, पंथ हैं, धाराएँ हैं, दर्शन हैं, अलग अलग धर्म हैं, उन सबका आधार एक ही है। उसी आधार से समस्त धर्म निकले हैं, उसी से विचारधाराएँ, दर्शन सब निकले हैं। मूल स्रोत होने के कारण वह परम कहलाता है। याने उससे बड़ा और कोई नहीं। वह सभी का कारण है पर उसका कारण कोई नहीं, वह अंतिम कारण है। आप अगर ऐसे भी चिंतन करो कि नहीं नहीं उसका भी कुछ तो कारण होगा उसके भी कोई तो पिताजी होंगे? तो फिर वही श्रृंखला चालू हो जायेगी, फिर उसके पिताजी कौन होंगे? इस श्रृंखला का जहाँ अंत है वही परमशिव है। हम इस

तरीके से ही उसको चिंतन में बैठा सकते हैं कि जो सबका स्रोत है और वही सबका प्रकाश है, वही शिव है। इसलिए कहते हैं कि वह सबको प्रकाशित करता है। प्रकाशित करने का मतलब होता है अस्तित्व में लाना। जैसे हम कहते हैं कि यह किताब प्रकाशित हो गयी, तो ऐसा नहीं कि पहले अँधेरे में रखी थी अब उजाले में रख दी। प्रकाशित होने का मतलब होता है अब सांसारिक अस्तित्व में आ चुकी है। इसलिए उसको बोलते हैं प्रकाशित हो गई। तो इस तरीके से वह सबको प्रकाशित करता है या कहें वह सबका प्रकाश है याने वह सबका अस्तित्व है। जीव जंतु हों जड़ हों, चेतन हों, भूत भविष्य वर्तमान हों, अन्तरिक्ष हो सब कुछ का जो मूल कारण है, जो सबको प्रकाशित करता है, वही सूर्य के प्रकाश को भी प्रकाशित करता है। अब हम यह समझ सकते हैं कि वह सबका स्रोत है, सूर्य के प्रकाश का भी स्रोत है, याने सूर्य का प्रकाश भी उसी के प्रकाश का हिस्सा है। हम ये नहीं कह सकते कि सूर्य का प्रकाश उससे बड़ा हो सकता है अथवा सूर्य का प्रकाश अलग है और उसका प्रकाश अलग है। वह तो समस्त प्रकाशों का प्रकाश है, समस्त प्रकाशों का अदिस्रोत है तो फिर उस प्रकाश को परमेश्वर के प्रकाश को क्या सूर्य का प्रकाश ढक सकता है? कभी भी नहीं ढक सकता क्योंकि उसमें ऐसी क्षमता कहाँ से आयेगी जो अपने स्रोत को ढक दे? यहाँ कमरे में एक दीपक जलायें उजाला हो जायेगा जब धूप में दीपक को रखेंगे तो दीपक बड़ी मुश्किल से दिखाई देगा क्योंकि उसकी रोशनी मद्दिम हो जायेगी। सूर्य के प्रकाश के कारण दीपक की रोशनी ढँक जायेगी। लेकिन परमेश्वर के प्रकाश को मद्दिम नहीं किया जा सकता क्योंकि उससे बड़ा कोई प्रकाश है ही नहीं, वह समस्त प्रकाशों का प्रकाश है, समस्त प्रकट अस्तित्व का आदिस्रोत है। वह किसी आवरण द्वारा आवृत्त नहीं किया जा सकता क्योंकि समस्त आवरण भी तो उसी से उत्पन्न हैं। अगर हम कहें कि अमुक आवरण से उसे आवृत्त कर देते हैं, भगवान् को एक परदे के पीछे छिपा देते हैं, तो वह पर्दा भी तो भगवान् है, उसको आवृत्त कैसे करोगे? उस परदे का सत्य भी जब

परमेश्वर ही है तो वह पर्दा भी तो परमेश्वर है। हम कहेंगे कि हम अज्ञान से आवृत्त हैं। तो अज्ञान क्या है? यह अज्ञान भी परमेश्वर है। जब ज्ञान परमेश्वर है तो अज्ञान भी परमेश्वर है। अगर प्रकाश या उजाला परमेश्वर है तो अँधेरा भी परमेश्वर है। अँधेरा कहाँ से आया? उसको किसने पैदा किया? उसके अस्तित्व के बारे में हम कह सकते हैं कि अंधकार की विधायक सत्ता नहीं है, कह सकते हैं कि प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम अन्धकार है। यह हमारी संसार की परिभाषा है। भौतिक प्रकाश की जब हम बात करें तो भौतिक प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम अन्धकार है, लेकिन **उस प्रकाश की अनुपस्थिति हो ही नहीं सकती**। उपस्थिति में तो वह उपस्थित है ही, लेकिन अनुपस्थिति में भी वह उपस्थित है। क्योंकि अनुपस्थिति कहाँ से आई? अनुपस्थिति को जन्म किसने दिया?, अज्ञान कहाँ से आया? संसार की समस्त ऋणात्मकता का अदिस्रोत भी परमशिव है। इस बात को प्रतिकारात्मक रूप से पुराणों में बताया गया है कि शिवजी की बारात में भूत पिशाच भी सम्मिलित हैं। तो क्यों? यह सब इसलिए बताते हैं कि आप समझ सको कि न केवल वह संतो को पैदा करता है, न केवल सज्जनों को पैदा करता है, न केवल वह विधायक रूप से दिखने वाले संसार को पैदा करता है, वरन वह उस संसार को भी पैदा करता है जो ऋणात्मक है। चाहे भूत प्रेत हों, उन सबका आदि स्रोत शिव ही है। जिसका काल्पनिक अस्तित्व है वह भी शिव ही है। संसार में जितने भिन्न भिन्न धर्म हैं उन समस्त धर्मों का स्रोत भी शिव ही है। यहाँ हम जान लें कि यहाँ हम जो शिव की बात कर रहे हैं वह किसी धर्म विशेष के देवता का नहीं वरन समस्त अस्तित्व का नाम है। समस्त देवताओं का भी स्रोत वही है। जब इस बात का बोध हो जाता है तो हमारे हृदय में समस्त धर्मों और पन्थों के प्रति सौहार्द पैदा हो जाता है। तब ऐसा लगेगा कि सभी हमारे अपने हैं क्योंकि जब हम एक परमपिता की विभिन्न संतानें हैं। हमारे बीच में क्या भेद हो सकता है? क्योंकि पिता तो एक ही हैं। हम उस पिता की बात कर रहे हैं जिसका कोई पिता नहीं था और उसी ने इस संसार में समस्त भिन्नता पैदा

की। वह जब एक ही था और एक ही से सब बने हैं तो जितनी विचारधाराएँ हैं, जितने धर्म के अलग अलग पंथ हैं जितने धर्म के अलग अलग स्वरूप हैं, उन सबका आदिस्रोत एक ही है। उसके सिवा और कोई स्रोत नहीं है, वही समस्त अस्तित्व का स्रोत है, वही समस्त सृष्टि का कारण है। अंधकार का भी तो अस्तित्व है, इसलिए अंधकार में भी वह उपस्थित है। वह उपस्थिति में भी उपस्थित है वह अनुपस्थिति में भी उपस्थित है, उसकी अनुपस्थिति असंभव है। जहाँ भी देखोगे जो कुछ समझोगे आपको सब जगह पर परमेश्वर उपस्थित दिखाई देगा। उसका प्रकाश किसी बाहरी प्रकाश अथवा अंधकार से आवृत्त नहीं किया जा सकता। समस्त सांसारिक प्रकाश या सांसारिक अस्तित्व उसी सार्वभौम अस्तित्व परशिव का अंश है, इसलिए फिर उससे बड़ा अस्तित्व कौन सा हो सकता है जो उसको मद्दिम कर दे? उसका प्रकाश समस्त प्रकाशों का प्रकाश है और वही अपने अस्तित्व में अपने स्वभाव में या अपने अंतस में समस्त प्रकाश, समस्त अंधकार और समस्त अस्तित्व को समाये हुए है। कैसे समाये हुए है? आगे चतुर्थ श्लोक में अभिनवगुप्तजी बताते हैं, अभी आप लोग बैठे हो, यह दर्पण रखा है, आप सभी उस दर्पण में दिखाई दोगे। आप जो अन्दर दिखाई दे रहे हो याने आपके अक्स में और उस दर्पण में क्या भेद है? कुछ भी भेद नहीं है। वह दर्पण है तो प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है दर्पण नहीं होगा तो प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं देगा। उस दर्पण और उस प्रतिबिम्ब में कोई भेद नहीं। आप गहरे से सोचो कि ये तो बाहर से आने वाली वस्तुओं का प्रतिबिम्ब है लेकिन अगर बाहर कोई भी वस्तु न हो फिर भी प्रतिबिम्ब दिखाई दे तो क्या कहोगे? अर्थात जो प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है वह दर्पण में ही रचित है! ऐसे ही परमेश्वर शिव ने अपने स्वभाव में, अपनी चेतना में, यह विश्व बनाया जो हमको बाहर प्रोजेक्ट हो रहा है, बाहर क्षेपित हो रहा है, दिखाई दे रहा है। यह शिव के स्वभाव के भीतर बना हुआ ब्रह्माण्ड है। सब कुछ उसमें समाया हुआ है। इस बात की अवधारणा बनने में हमारी सामान्य बुद्धि बहुत बड़ी बाधा है।

कामनसेंस का मतलब होता है घिसे पिटे रास्ते पर सोचना, हम उससे अलग हटकर सोच ही नहीं पाते, एक ही रास्ता है हमारे पास सोचने का जो हमने दो और दो चार जान लिया तो इससे इतर सोच ही नहीं सकते, उसी रास्ते पर हमारा दिमाग चलते जाता है। इसलिये इस बात को समझना जरूरी है कि वह प्रकाश स्वरूप है और प्रकाश मतलब अस्तित्व याने हर चीज का अस्तित्व वह चाहे ऋणात्मक हो चाहे धनात्मक, समस्त अस्तित्व का स्रोत वही है। उसको किसी भी आवरण द्वारा आवृत्त नहीं किया जा सकता। अभी यहाँ पर छत पर लगे बल्ब से उजाला हो रहा है, आप बल्ब को किसी भी कपड़े से आवृत्त कर दो तो उसके नीचे अँधेरा रहेगा। वह कपड़ा भी तो शिव है और अन्धेरा भी तत्त्वतः शिव है। इसलिए शिव को कैसे आवृत्त करोगे? जो कुछ भी आता है अस्तित्व में वह शिव ही है, जो कुछ भी जाना जा सकता है या जिसकी कल्पना की जा सकती है वह भी शिव ही है। यह बात हमारे हृदय में जब स्थिर हो जायेगी तब एक गहन शांति का अनुभव होगा क्योंकि परमेश्वर से अलग किसी वस्तु को किया ही नहीं जा सकता। किस चीज को आप अस्तित्व से अलग कर सकते हो? जैसे पानी है तो पानी को उसके अस्तित्व से अलग कर दो असंभव है, पानी को पानी से अलग कैसे करेंगे? ऐसे ही जैसे शिव और शक्ति को हम अलग नहीं कर सकते।

दूसरा सूत्र कहता है **उसे परशिव कहते हैं,** यह हमारी परम्परा का नाम है। उसे कुछ भी कह लो जो नाम रखना हो रख दो, उसको नाम से कुछ भी अंतर नहीं पड़ता। यहाँ **उसे परशिव कहते हैं। वह सभी जीवों का अस्तित्व है। हमें जो कुछ दिखाई दे रहा है उस सबका अस्तित्व भी उसी की वजह से है। सारा प्रकट विश्व उसकी शक्ति का ही विकास है**। सृष्टि शिव के गौरव से ओत-प्रोत है। समस्त शक्ति और विश्व ये एक ही सत्ता के दो नाम हैं सारा विश्व और शिव की शक्ति ये दो नाम नहीं हैं ये एक ही सत्ता के दो नाम हैं। हम अगर यह कहें कि क्या यह सत्य समझा जा सकता है? क्या सत्य वैज्ञानिक विधि से भी

सिद्ध किया जा सकता है? तो इसका सीधा सीधा जवाब है हाँ! क्योंकि विज्ञान आज इस निषकर्ष पर पहुँच चुका है कि समस्त पदार्थ का मूल अस्तित्व शक्ति है और समस्त पदार्थ को शक्ति में बदला जा सकता है। सबसे पहले आइन्स्टीन ने इस बात को सिद्ध किया था, उन्होंने गणित के कुछ समीकरण बना दिए थे जो विश्व प्रसिद्ध हैं। $E = MC^2$ एक समीकरण है जो आइन्स्टीन ने १९०५ में दिया था। याने घनघोर उर्जा से एक छोटा सा कंकर बना है। एक छोटा सा कंकर अगर एकाएक उर्जा में बदल जाये तो छोटे से कंकर की उर्जा हमारे पूरे शहर को तहस नहस करने के लिए पर्याप्त है! और यही सिद्दांत है परमाणु बम का जब वह घनीभूत उर्जा जो युरेनियम के अणुओं के अन्दर कैद है, एकाएक मुक्त उर्जा के रूप में बदल जाती है, ये अणु अपना आणविक अस्तित्व खो देते है, उर्जा खुली छूट जाती है और उस समय जो विस्फोट होता है वह विस्फोट क्या कर सकता है हम देख चुके है हिरोशिमा, नागासाकी पर। दो बार विश्व युद्ध के समय बम गिरे थे, क्षण भर में युरेनियम के अणु ऊर्जा में बदल गए थे। वह पदार्थ की उर्जा थी। आप अनुमान लगाओ कि एक छोटे से गेंद जैसे बम की उर्जा जब एक शहर को नष्ट कर सकती है तो पूरे ब्रह्माण्ड की उर्जा का स्वरूप क्या होगा? वही शिव की स्वातंत्र्य शक्ति है। हमारे छोटे से दिमाग में अनुमान लगाने के लिए हम ऐसी बातें करते हैं अन्यथा जो कुछ है वह शिव की शक्ति है। पूरे ब्रह्माण्ड में चाहे वह पत्थर हो, चाहे व्यक्ति हो, जीव जंतु हो, सबका अस्तित्व उसी शक्ति के कारण है और वही शक्ति शिव की शक्ति है। यही शिव की अर्धांगिनी है, यही माँ है, यही विश्वजननी है और उसी से ब्रह्माण्ड है। उस शक्ति से ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत है। ओत-प्रोत का मतलब है – ऐसा कुछ नहीं है जहाँ वह नहीं है। एक छोटे से छोटा कण इलेक्ट्रॉन हो तो भी उसमें शक्ति भरपूर है क्योंकि शक्ति के अलावा कुछ है ही नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं कि सृष्टि में पदार्थ नाम की कोई चीज है ही नहीं, जो कुछ है वह शक्ति है। हमारे ऋषि सदियों से एक और बात समझाते आये थे। बृहदारण्यक उपनिषद में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद है, उस संवाद में स्पष्टतः

निरूपित है कि अन्तरिक्ष की विधायक सत्ता है। मतलब ऐसा नहीं कह सकते कि 'कुछ नहीं' का नाम, खाली जगह का नाम अन्तरिक्ष है। ऊपर क्या है? 'कुछ नहीं खाली जगह है", यह धरणा ही गलत है। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद पढ़कर हम रोमांचित हो जाते हैं। लोगों को जो बात बीसवीं सदी में समझ आयी वह बात उन्होंने हजारों वर्ष पहले कही थी। उन्होंने कहा था कि अन्तरिक्ष के घटक हैं, अन्तरिक्ष के घटक याने उसकी इकाइयाँ। जैसे हम कहते हैं कि मकान ईंटो से बना है, अन्तरिक्ष के भी घटक हैं और उन घटकों का भी स्रोत शक्ति है। यह बात आज विज्ञान जानता है आइन्स्टीन ने सिद्ध कर दिया है कि अन्तरिक्ष 'कुछ नहीं' का नाम नहीं है, उसकी विधायक सता है, उसके गुणधर्म हैं, अंतरिक्ष एक तनी हुयी चादर की तरह है, अन्तरिक्ष को मोड़ा जा सकता है, जैसे तानी हुयी चादर पर कोई भारी पत्थर रख दिया जाये तो चादर आस पास से पत्थर की और मुड़ जाती है, वैसे ही अन्तरिक्ष किसी भारी पिंड के कारण मुड़ जाता है। उस स्थल पर आता हुआ प्रकाश भी मुड़ जाता है। क्योंकि प्रकाश उस अन्तरिक्ष का अनुसरण करता है, अन्तरिक्ष मुड़ा होगा तो प्रकाश भी मुड़ जायेगा। अंतरिक्ष की विधायक सत्ता है यह ज्ञान हमारे ऋषियों को अंतर्बोध से हुआ था। तभी तो उन्होंने पांच महाभूतो में अन्तरिक्ष को भी रखा। पृथ्वी हमको दिखती है, जल दिखता है, अग्नि दिखती है, वायु का एहसास होता है लेकिन आकाश के बारे में हम चुप रहते हैं, हमको कुछ समझ नहीं आता आकाश के क्या गुणधर्म हो सकते हैं। हम कह सकते है कि जल १०० डिग्री सेल्सियस पर उबलता है, वाष्प बन सकता है, बर्फ भी उसी का रूप है, बहुत सारे गुणधर्म बता सकते हैं, धरती के बता सकते हैं, वायु के बता सकते हैं, अग्नि के बता सकते हैं लेकिन आकाश के बारे में अब तक लम्बे समय से हम मौन थे। विज्ञान मौन था, विज्ञान को तो अभी सौ साल ही हुए आकाश को समझने में कि आकाश क्या है। लेकिन ऋषियों को यह बात समझ में आ गयी थी कि अन्तरिक्ष 'कुछ नहीं' का नाम नहीं है, शून्य का नाम नहीं है। अन्तरिक्ष की अपनी विधायक सत्ता है। सारा

प्रकट विश्व उसकी शक्ति का ही प्रसार है। हम कहेंगे कि परमेश्वर को इतना नाटक करने की जरूरत ही क्या थी? उसने अपनी शक्ति से विश्व बनाया तो विश्व का खेल क्यूँ रचा, उसको रचने में क्या मजा आया?, वह सब कुछ कर सकता था, वह सब कुछ उसके पास था, उसको किसी चीज की आवश्यकता नहीं थी, वह आत्म तृप्त था, वह पूर्ण था, वह सर्वशक्तिमान था फिर उसने ये विश्व बनाने की माथापच्ची क्यों की? अपने आप को इस विश्व के रूप में, अपनी शक्ति को विश्व रूप में क्यों प्रकट किया इसके जवाब में आगे कुछ श्लोक भी हैं लेकिन हम उसकी पूर्व भूमिका थोड़ी सी आज समझ सकते हैं। शिव जानते हैं कि उनके सिवाय कोई है ही नहीं। उनका अनुभव है: - मैं अकेला हूँ, पूर्ण आनंदमग्न हूँ, पर एक बात बताइये कि शिव को उस आनंद का एहसास कैसे होगा? उस आनंद को वह महसूस कैसे करेगा? देखो तुमको भूख नहीं लगी तो रोटी खाने के आनंद को कभी महसूस नहीं कर सकते, आपको प्यास नहीं लगी हो तो पानी पीने के आनंद को महसूस ही नहीं कर सकते, मछली जल में ही आनंदित रहती है लेकिन वह उस आनंद को नहीं जानती, अगर उसे कुछ देर जल के बाहर रहना पड़े तो फिर पुनः जल में प्रवेश करने के विलक्षण आनंद को जान जायेगी। यही कारण है कि उसने अपने आपको अधूरा बनाया और फिर पूर्णता के आनंद को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हुआ। अपने आप को अधूरा बनाया, संसार अधूरा है हम भी अधूरे हैं, हर चीज अधूरी है, यहाँ संसार में बताओ क्या पूर्ण है? पूर्ण सब हैं लेकिन उस पूर्णता के ज्ञान से दूर हैं, हममें एक अज्ञान है कि हम अपूर्ण हैं, यह भ्रम है। अज्ञान मतलब भ्रम, हमको एक भ्रम है कि हम अपूर्ण हैं, हम शिव नहीं हैं और इसके कारण हम अपूर्ण हैं। तब हम कहते हैं कि हमको यह चाहिये, वह चाहिये, हम भागते फिरते हैं संसार की दिशा में और जितना मिलता जाता है उसको संग्रहित कर और आगे बढ़ते जाते हैं, यह भी चाहिये, वह भी चाहिये, क्योंकि हम समझते हैं कि हम अपूर्ण हैं और हम पूर्णता की ओर अग्रसर हों तो हमको पूर्णता की और अग्रसर होने में एक आनंद की प्राप्ति होती है। वह आनंद

शिव को भी अप्राप्त था जब वह पूर्ण था और उसको कुछ भी नहीं चाहिये, वह पूर्ण आनंद में था लेकिन वह आनंद महसूस कैसे करे? कभी प्यास ही नहीं लगे, उसे भूख ही नहीं लगे, उसे कभी किसी चीज की इच्छा ही न हो, तो उसे आनंद की अनुभूति कैसे होगी? आनंद की अनुभूति मतलब उसको स्वयं की शक्ति का बोध। उसको अपनी शक्ति को तोलना था। एक पहलवान है जिसे कभी कुश्ती नहीं लड़ने दो, बहुत ताकत है उसके पास। लेकिन उसके गुरु ने कहा "बैठे रहो चुपचाप, कुश्ती नहीं लड़ना" तो उसे मजा ही नहीं आयेगा। पहलवानी का मतलब क्या अगर सामने कोई लड़ने वाला एक भी नहीं है? जो मैंने इतनी वर्जिश कर इतना शरीर बनाया किस काम का? अरे कुर्सी पर बैठे रहने के लिए थोड़े ही पहलवान बना हूँ। मैं पहलवान इसलिए बना हूँ कि दो चार हाथ दिखाऊं किसी को। शिव का विमर्श था कि मैं बहुत शक्तिशाली हूँ पर मुझे कैसे महसूस हो कि मैं शक्तिशाली हूँ? किसको बताऊँ, कैसे मैं बताऊँ कि मैं कैसा हूँ? तो उसने अपने आपको जाँचने तोलने के लिए ब्रह्माण्ड बनाया कि मैं कौन हूँ? क्योंकि जब एक व्यक्ति रोजाना वर्जिश करता है वह पहले पांच किलो का भार मुश्किल से उठा पाता था फिर उसकी शक्ति बढ़ गई वह क्या करेगा अपनी शक्ति को तोलने के लिये वजन उठाएगा और ये देखेगा कि मेरी शक्ति अब दस किलो भार उठाने की हो गई है, अब पंद्रह किलो तक हो गई है। तो वह अपनी ताकत को बढ़ाने का प्रयास करता है उसे तोल कर ही पता लगाएगा अगर वह तोलेगा नहीं तो कैसे पता चलेगा कि ताकत अब कितनी बढ़ गई? ऐसे ही शिव सोचते हैं कि मैं बहुत शक्तिशाली हूँ मेरे सामने तो कोई भी दिखाई नहीं देता लेकिन कैसे पता लगाऊं कि मेरी शक्ति कितनी है? और उस शक्ति का आनंद कैसे लूँ? तो उसने सब जीव जंतु बनाये और अपने आपको इस भुलावे में डाल दिया कि मैं शिव हूँ। याने शिव की स्वातंत्र्य शक्ति में कितनी स्वतंत्रता है! हम अपने आपको भुलावे में नहीं डाल सकते लेकिन वह अपने आपको भुलावे में भी डाल सकता है। वह स्वयं के गौरव से अनजान बन सकता है, मैं और आप

इसके जीवंत उदाहरण हैं, हम भूल चुके हैं कि हम कौन हैं। अपनी स्मृति को पुनः पाना ही प्रत्यभिज्ञा है, अध्यात्म है। एक बार बचपन में किसी ने एक उलझन भरा प्रश्न पूछा था "क्या भगवान इतना बड़ा पत्थर बना सकते हैं जो वे स्वयं नहीं उठा सकें"? आज जानता हूँ "हाँ, वह ऐसा पत्थर बना सकता है।" वह अपने आप को भुलावे में डालता है, अपनी शक्ति को भूल कर वह सीमित शक्ति का स्वामी बन सकता है। भुलावे से बाहर आते ही उसको समझ में आ जाता है कि मैं शिव हूँ, और सच में तो वह भूलता ही नहीं क्योंकि जैसे ही वह अपने आप को जानता है उसकी स्मृति लौट आती है। उसको समस्त ज्ञान मिल जाता है। अगर वह भूल गया होता तो अपने आपको पहचनाने से उसे वह पूरा ज्ञान कैसे मिल सकता था? वह अपने आपको भूल गया होता तो वह ज्ञान भी हमेशा के लिए भूल गया होता। फिर उसको अपने स्वरूप का ज्ञान होने से वह सारा ज्ञान कैसे आ जाता? याने वह भुला नहीं था वह भूलने का उपक्रम कर रहा था, भूलने का खेल खेल रहा था। इसलिए हम जब अपनी साधना के द्वारा या अपनी प्रबल इच्छा के द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का चिंतन करते हैं और उसको उघाड़ लेते हैं कि हम कौन हैं उस समय हम पाते हैं कि हम शिव हैं और हम शिव थे और हम कहें कि हमने इतनी जिंदगी बिगाड़ दी ५० साल की जिन्दगी बिगाड़ दी पता नहीं कितने जन्म बिगाड़ दिये। जब शिवत्व का अनुभव होगा तो ये अनुभव होगा कुछ भी नहीं बिगड़ा कुछ भी नहीं पाया कुछ भी नहीं खोया, जो था वही है! शिवत्व से चले थे शिवत्व में क्या खोया क्या पाया समय की अनुभूति तो कोई मायने नहीं रखती शिव के लिए क्योंकि वह समय से परे है। शिवत्व का अनुभव होते ही हम पुनः उस आनंद से एक हो जाते हैं। क्योंकि हमको उसके बाद ऐसा नहीं लगता कि हमने कुछ खोया हमने कुछ पाया और वह व्यक्ति हृदय में प्रेम और करुणा से सरोबर हो जाता है, क्योंकि वह जानता है कि वे सब लोग जो सामने बैठे हैं, कुछ दुष्ट हैं, जो गलत दिशा में जा रहे हैं,जो संसार में डूबे हुए हैं उन सबके प्रति भी उसके हृदय में प्रेम पैदा हो जाता है। वह

जानता है कि ये लोभ क्या है? ये भी शिव है, मोह क्या है? वह भी शिव है, ईर्ष्या क्या है? वह भी शिव है, अपराधी क्या है? वह भी शिव है, कहते हैं कि जब वह अपने वास्तविक रूप को पहचानता है तो जान जाता है कि न मैंने कुछ खोया है न मैंने कुछ पाया है मैं जहाँ था वहा हूँ। मैं थोड़ी देर के लिए घूमने गया था वापस आकर बैठ गया, इस संसार की यात्रा करके वापस घर आ गया, मैंने कुछ खोया नहीं, कुछ पाया नहीं क्योंकि पाने लायक कुछ है ही नहीं और खोने लायक कुछ है नहीं। शिव क्या खोयेगा और क्या पायेगा क्योंकि पाने लायक तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ है उसीने बनाया है। खोयेगा क्या? खो कर जायेगा कहाँ? उससे अलग कुछ हो ही नहीं सकता। इसलिए उसके लिए पाने के लिए कुछ है ही नहीं खोने को कुछ है ही नहीं इसलिए जब ये अनुभूति होती है तो वह आनंद अपनी चरम सीमा पर होता है। लेकिन शिव को कोई जल्दी नहीं है संसार को समेटने की। और लें थोड़ी देर आनंद, हम मेले में घूमने जाते हैं जेब के पैसे खर्च भी हो गये तो ठीक है, पैसे नहीं भी हैं तो क्या हो गया घूमें तो सही, थोड़ी देर घूमने के कोई पैसे तो नहीं माँग रहा है। हम फिर घूमते, खूब आनंद लेते हैं ऐसे ही जो योगी परशिव के स्वरूप तक पहुंच जाता है, जिसे स्वस्वरूप का बोध हो जाता है, तब भी वह मंदिर जाता है, शिवजी पर जल चढाता है, कभी कथा वाचने लग जाता है कभी तीर्थ जाता है, कभी गंगाजी में नहाने जाता है। मैं अभी ये आनंद तो लूँ मुझे क्या करना है। न कुछ खोया न कुछ पाया, लेकिन मजे लेने में क्या समस्या है? अब करना कुछ नहीं है, न कोई साधना करनी है, न अपना कुछ कर्म बाकी है, न दुनिया से कुछ लेना बाकी है न कुछ देना बाकि है, क्योंकि शिवत्व के बाद कुछ भी शेष नहीं है, तो फिर भी इस संसार के आनंद के लिए योगी ऐसा करते है। वह योगी कभी सिनेमा देखने जाता है कभी कोई खेल खेलने जा रहा है, कभी वह मित्रों के साथ मस्ती करने लग जाता है। लोगो को लगता है यह तो बहुत साधारण आदमी है! कल इसे मैंने क्रिकेट खेलते देखा! तुमको उसका अन्तस कैसे मालूम होगा? तुमको क्या मालूम उसके भीतर

कितनी शिवत्वता है। इसलिए किसी पर टिप्पणी मत करो, अपने अन्दर झांको, संसार में तो शिव के सिवा कुछ है ही नहीं। तुम कहोगे वह जींस पहन कर घूम रहा था, कल मैंने देखा एक मित्र के घर शादी में नाच रहा था। लोगो के बारे में हमारे जो अनुभव हैं, वे समस्त अनुभव छल हैं। उन छलों में हम छले जाते हैं। इस मिथ्या अनुभव से किसी और का कुछ नहीं बिगड़ता, बिगड़ता तो हमारा है, हम छले जाते हैं, और हम अपनी शिवत्वता से दूर हो जाते हैं। अपने अज्ञान के आवरण में हम फिर से उस खेल में शामिल हो जाते हैं, लेकिन खिलाड़ी नहीं, गेंद की तरह। हम अगर इस खेल में खिलाड़ी बनना चाहते हैं, बरसों से गेंद की तरह इधर उधर ठोकरें खाए जा रहे हैं, तो उसके लिए बैठ कर अंतर्चिंतन करें कि इस अस्तित्व का स्रोत क्या है? समस्त संसार के रूप में शिव की ही शक्ति है, शिव मेरे भीतर ही विराजमान हैं, शिव ही मेरा वास्तविक स्वरूप है, और यहीं से पूरा ब्रह्माण्ड प्रकट हो रहा है, यह सारा ब्रह्माण्ड मेरी ही शक्ति का विकास है। ये बातें धीरे धीरे समझ में आने लगती हैं, ये बातें मात्र शाब्दिक खेल नहीं हैं, मात्र सैद्धांतिक नहीं हैं ये बोध की बात है। बोध जिस दिन हो जायेगा तो हृदय आनंद, शांति और ईश्वर प्रेम से भर जायेगा, संसार के प्रेम से भर जायेगा। संसार को और ईश्वर को प्रेम करना दो अलग बाते नहीं हैं। **इस संसार को प्रेम करो चाहे ईश्वर को प्रेम करो, एक ही बात है। क्योंकि संसार और ईश्वर दो अलग अलग सत्तायें नहीं हैं। जो संसार है वही ईश्वर है, जो ईश्वर है वही संसार है।** इन १५ श्लोको पर गंभीरता से चिंतन करें तो हमारे शिवत्व पर जो अज्ञान का आवरण पड़ा है, वह हटने लग जायेगा। जिस दिन ये अनुभव होने लग जायेगा हममें बोध पैदा होने लग जायेगा। । जैसे आप बोल रहे हैं तो बोलते बोलते भी आप लगातार जागरूक रहो कि यह कौन बोल रहा है? हम सोचते हैं "मैं बोल रहा हूँ", क्या ये जिह्वा बोल रही है? क्या ये तालू बोल रहे हैं? क्या ये होठ बोल रहे हैं? क्या ये फेफड़ो से निकलने वाली हवा बोल रही है? लेकिन इसका प्रेरक कौन है? चलो होठ तो हिल रहे है, गला चल रहा है, जिह्वा चल रही है लेकिन

इनको चला कौन रहा है? इसके तालमेल के पीछे इन्हें एक सूत्र में पिरोने वाला कौन है? एक शक्ति जो सतत इसको बोलने के लिए प्रेरित कर रही है और वह शब्द जो निकल रहे हैं मुंह से, वे शब्द निकलने के पहले कहाँ थे? और कौन उन शब्दों को गढ़ कर बाहर निकाल रहा है? शब्दों में अर्थ रूप से कौन स्थित है? आपके अन्दर ही वह शिव बैठा है जो एक एक शब्द को टकसाल में बना बना कर बाहर अभिव्यक्त कर रहा है। वही है जो यह कर सकता है, और किसी की क्षमता नहीं है। इस जड़ शरीर की क्षमता नहीं है कि हम बोल भी सकें, एक शब्द भी बोल सकें, माँ को आवाज भी दे सकें, क्योंकि शब्द "माँ" भी भीतर से टकसाल की तरह गढ़ कर एक सोने के सिक्के की तरह बाहर आ रहा है। वही हमारे भीतर है जो ये एक एक शब्द को गढ़ रहा है, प्रत्येक शब्द को बना रहा है। हम जो शब्द बोलते हैं, जो कार्य करते हैं, उन समस्त क्रियाओं का जनक, जो हम विचारते हैं उन सब विचारों का जनक भी वही परमशिव है जो 'मैं' के रूप में इस शरीर के भीतर है। गुरु नारायण---

बोधपञ्चदशिका पाठ ३

आज दिनांक १४ दिसम्बर २०१७ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। हम पिछले सप्ताह से बोधपञ्चदशिका का अध्ययन प्रारम्भ कर चुके हैं और बोधपञ्चदशिका क्या है इसके बारे में हमने दो सप्ताह पूर्व समझा था। हम अद्वैत शैव दर्शन का जब अध्ययन करते हैं तो बहुत सारी बातें ऐसी होती हैं जो हमारी समझ में कठिनाइयाँ पैदा करती हैं। कठिनाइयाँ कुछ बाहर से आती हैं कुछ हमारी अपनी पैदा की हुई होती हैं। जो बाहर से आने वाली कठिनाइयाँ हैं वे हमारी प्रबल इच्छा शक्ति से दूर की जा सकती हैं। लेकिन जो आतंरिक कठिनाइयाँ हैं उनके लिए हमें अपने हृदय की ग्रन्थियों को खोलना पड़ता है। क्योंकि हम सैकड़ों वर्षों

से, कई जन्मों से जिन मान्यताओं, धारणाओं को अपने जीवन का आधार माने हुए हैं, उन मान्यताओं से पार पाना आसान नहीं है। बचपन में जो बातें हमारे मन में घर कर जाती हैं उनसे बड़े होने के बाद भी छुटकारा बड़ी मुश्किल से मिलता है, तो फिर हमारे हृदय में कई जन्मों की जो मान्यतायें हैं उनसे कैसे मुक्ति मिलेगी? यही एक सबसे बड़ी रुकावट है। अद्वैत वह है जिसको समझने के बाद संसार में कुछ समझना शेष नहीं रह जाता। अद्वैत का मतलब होता है हमको अपना वास्तविक स्वरूप समझना। परमेश्वर ने अपने आपको इस संसार के रूप में प्रकट किया। परमेश्वर में और संसार में कोई भेद है ही नहीं। विश्व में दो सत्ताएं हैं ही नहीं। विश्व एक इकाई है जो शिव से प्रारंभ होकर विश्व तक फैली है, जैसे एक कार के अन्दर कई पुर्जे होते हैं, इसी तरह विश्व में भी कई हिस्से हैं जड़ है, चेतन है और चेतन के भी कई रूप हैं, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, और जड़ संसार के भी भिन्न भिन्न रूप हैं। उन सब रूपों में परमेश्वर ही विराजमान है, वही अपने आपको इन रूपों में प्रकट किये हुए है। आगे चलकर हम लोग समझेंगे कि आखिर ऐसा क्यों किया उसने? क्यों उसने ये संसार बनाया? और क्यों ये संसार बनाने का खेल खेला? पिछली बार दो सूत्र हमने पढ़े थे कि वह प्रकाश स्वरूप है याने अस्तित्व रूप है, उसको किसी भी आवरण से न तो ढका जा सकता है न उसके प्रकाश को मद्दिम किया जा सकता है। ये सारा जड़ प्रकाश बाहर से प्रकट होता है, इसको आवृत्त किया जा सकता है, मद्दिम किया जा सकता है लेकिन जो प्रकाश अस्तित्व स्वरूप है जो समस्त प्रकाशों का स्रोत है उस प्रकाश को न तो मद्दिम किया जा सकता है न ही आवृत्त किया जा सकता है। अस्तित्व तो चैतन्य रूप है जब वह संसार को बनाता है, सृष्टि का निर्माण करता है, तब अपने आपको सृष्टि के रूप में प्रकट करता है तब उसका दूसरा पहलू प्रकट होता है जिसका नाम है विमर्श, विमर्श याने अपने आपको तोलना अपनी शक्ति को तोलना उसका नाम है विमर्श उसी का नाम है परमेश्वर की स्वातंत्र्य शक्ति। परमेश्वर शिव की स्वातंत्र्य शक्ति तभी प्रकट होती है जब विश्व के निर्माण के

लिए शिव उद्धत होते हैं। जब वह आनंद मग्न होते हैं, अपने आप में मग्न होते हैं, उस समय वह शक्ति उनके स्वरूप के भीतर होती है। शिव शक्ति के एक मात्र स्वामी हैं, उनका कोई प्रतिद्वंदी नहीं है इसलिए उस शक्ति को स्वातंत्र्य शक्ति कहते हैं। उसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है। जैसे हम यहाँ से किसी चीज को फेंके तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति उसको रोकने की कोशिश करेगी, अगर मैं आपको धक्का दूं तो आप मुझे रोकने की कोशिश करोगे। इस संसार में उसी शक्ति के कई रूप हो गये हैं, शक्ति की भिन्न भिन्न धाराएँ एक दूसरे की विरोधी प्रतीत होती हैं लेकिन सबका स्रोत वही स्वातंत्र्य शक्ति है। उसका कोई प्रतिस्पर्धी है ही नहीं इसलिए शिवकी जब जैसी इच्छा होती है निर्बाध रूप से पूर्ण होती है। उसकी इच्छा का विरोध करने की शक्ति और किसी में है ही नहीं। इस तरह से पहला सूत्र था कि हम किसी अन्य प्रकाश से उस प्रकाश को मद्दिम कर सकें ऐसा संभव ही नहीं है क्योंकि वह प्रकाश उसका मूल स्वरूप है और न हम उसको आवृत्त कर सकते हैं न हम मद्दिम कर सकते हैं, दूसरा सूत्र ये था कि इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ दिखाई दे रहा है हम जो ये अनुभव कर रहे हैं, हम जिस चीज को कान से सुन रहे हैं, नाक से सूंघ रहे हैं, आँख से देख रहे हैं याने हमारी पांच इन्द्रियों से हम जिसका ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं, वह समस्त संसार शक्ति का स्वरूप है। इसमें शक्ति के सिवाय कुछ भी नहीं है। अर्थात संसार और शिव को अगर हम कहे कि पर्यायवाची हैं, तो यह सत्य है। फिर हम कहेंगे शिव और शक्ति ये दो नाम कैसे हो गये वास्तव में जैसे अग्नि और उसकी दाहकता ये दो नाम होते हुए भी अभिन्न हैं। अगर हम कहें कि अग्नि और ठंडी है तो अग्नि है ही नहीं, हम कहते हैं कि दाहकता है पर अग्नि है ही नहीं तो दाहकता रहेगी कहाँ? क्योंकि उसको भी रहने के लिए एक आसरा चाहिये। शक्ति को शक्तिमान का आसरा चाहिये और शक्तिमान को शक्ति का आसरा चाहिये क्योंकि दोनों एक दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते हैं, न ही किसी काम के हैं। शक्तिमान बिना शक्ति के किसी काम का नहीं है और शक्ति बिना शक्तिमान के कहाँ रहेंगी?

इसलिए दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं। शैव दर्शन में इसको एक चक्र की तरह मानते है कि चक्र का जो केन्द्र है वह शिव है और वह चक्र के आरे हैं और जितना प्रसार है उसकी वह शक्ति है। शिव शून्य स्वरूप है इसलिए हमको दिखाई नहीं देता, और शक्ति चूँकि विस्तार लिये हुए है प्रकट है इसलिए हमको दिखाई देती है। अतः संसार में जो दिखाई दे रहा दे रहा है, जितने जीव जंतु दिखाई दे रहे हैं, मित्र दिखाई दे रहे हैं, अड़ोसी-पड़ोसी, मकान, आसमान, सूर्य, तारे, नदियाँ, जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सब कुछ शक्ति है। शक्ति प्रकट है, मेनिफेस्ट है और शिव अनमेनिफेस्ट है याने अप्रकट। वह अपने आपको एक बिंदु स्वरूप या अस्तित्व रूप में छिपाए हुए है। पूरा विश्व ही शिव के सिवा और कुछ भी नहीं है और शिव ने अपनी शक्ति को विश्व रूप में प्रकट किया है। शिव ने जब अपनी शक्ति को तोलना चाहा कि मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे भीतर शक्ति हिलोरे ले रही है लेकिन कोई विरोध नहीं है, कुछ भी कर सकता हूँ लेकिन मैं करके तो देखूं! जब तक करके न देखूं तो कैसे जानूं कि मेरी शक्ति वास्तव में शक्ति है? यह कुछ कर भी सकती है या नहीं, उसने अपने आप को तौलने के लिए शक्ति को प्रकट किया उस प्राक्टय रूप का ही नाम है विश्व। **परमेश्वर शिव अपनी शक्ति को ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट करते हैं लेकिन वे यह नहीं जानते कि वे स्वयं और उनकी शक्ति दोनों अलग हैं, शिव और शक्ति अपने भेद को नहीं जानते** शिव ये नहीं जानते कि शक्ति मुझसे अलग है और शक्ति ये नहीं जानती कि शिव मुझसे अलग है। दोनों एक दूसरे को भिन्नता के रूप में जानते ही नहीं। कैसे जानेंगे? ये तो हमने अपनी सुविधा के लिए दो नाम दे रखे हैं **जैसे** पहलवान और उसकी ताकत, जल और उसका प्लवन, **अग्नि और उसकी दाहकता**, शक्कर और उसकी मिठास, हम शक्कर को उसकी मिठास से अलग कर दें तो वह शक्कर ही नहीं रह जायगी। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। शिव शक्ति अग्नि और दाहकता की तरह अभिन्न हैं। शिव चूँकि सर्वशक्तिमान है, उससे बड़ी शक्ति किसी के पास है नहीं, इसलिए वह विश्वरूप

भी है और विश्वोत्तीर्ण भी है। विश्वरूप का मतलब होता है कण कण शिव है, शिव के सिवाय कुछ भी नहीं है और इसके बावजूद वह विश्वोत्तीर्ण भी है अर्थात वह इस विश्व को देख भी रहा है। जैसे कोई लेखक रामप्रसाद एक लेख लिखता है, तदन्तर उस लेख को प्रकाशित होते हुए देखता है। हम अनुसंधान करते हैं यह क्या स्थिति है? लेख रामप्रसाद का लिखा हुआ है, रामप्रसाद के हस्ताक्षर ही रामप्रसाद को सिद्ध करते हैं, लेख रामप्रसाद से अलग नहीं है। बिना लेखक के लेख का अस्तित्व ही नहीं है, लेकिन रामप्रसाद उसको देख भी रहा है उससे विलक्षण भी है, उससे अलग, उच्चतर भी है, वह लेख में संशोधन कर सकता है, अगले संस्करण में उसे बदल सकता है। तो शिव विश्वमय है और विश्व से विलक्षण भी है, विलक्षण मतलब अलग, हटा हुआ। **विश्व को देखने वाला भी वही है और विश्व भी वही है**। समस्त संसार को शिव ने अपनी शक्ति के आकलन के लिए प्रकट किया। शक्ति क्या है? उसकी आत्मा। परमेश्वर शिव की वास्तविक आत्मा, क्योंकि शक्ति के बिना शिव कुछ कर ही नहीं सकता, और असमर्थ हो तो फिर शिव कैसा? शिव ने अपनी क्रियाशक्ति का उपयोग करके देखा और वही उसकी आत्मा है। तो अन्य शब्दों में बोल सकते हैं कि संसार की रचना परमेश्वर शिव ने आत्मबोध के लिए की। अपने स्वरूप को पहचानने के लिए की अपने आप को पहचानने के लिए परमेश्वर शिव ने इस संसार की रचना की। यही संसार हमारे लिए भी आत्मबोध का कारण बन सकता है, इसी संसार में रहकर हम आत्मबोध प्राप्तकर सकते हैं। संसार से भागने की आवश्यकता नहीं। जो सार संक्षेप में अभिनवगुप्तजी ने बताया है और लक्ष्मणजू महाराज ने विवेचना की है वह यह कि इस संसार से अलग रहकर तुम सदियों तक कोशिश करो, आत्मबोध प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हारी आत्मा तो यही है, जो चारो तरफ फैली हुई है। यह सृष्टि ही तुम्हारी आत्मा है। इससे दूर भाग कर अगर तुम कोशिश करोगे कि मुझे आत्मबोध हो जाये तो आत्मबोध नहीं होगा। इस संसार को शिव ने किसलिए बनाया? इस पर ध्यान करने के लिए, ताकि मैं इस

शक्ति को तौल सकूँ और अपनी शक्ति को पहचानूँ कि मैं क्या कर सकता हूँ। जब शिव ने इस संसार को आत्मबोध के लिए, स्वयं की शक्ति को पहचानने के लिए अभिव्यक्त किया तो हम भी अपनी शक्ति को पहचानने के लिए इस संसार का वैसा ही उपयोग कर सकते हैं जैसे शिव करता है। शिव संसार को स्वयं की आत्मा की तरह, अपनी शक्ति की तरह देखता है। तो "हे शिव! मुझ पर भी अनुग्रह कर ताकि मैं उस दृष्टि का स्वामी बन जाऊँ जिससे इस संसार को अपने विकास की तरह देखूं", यही प्रार्थना हम सदैव करते हैं। जब मैं इस सृष्टि को अपने विकास की तरह देखूंगा तो मैं शिव से अभिन्न हो जाऊँगा, मन शिवमय हो जायेगा और मैं शिव में विलीन हो जाऊँगा। इसको परमार्थ कहते हैं, अर्थ याने धन, परम याने अंतिम, जो आखरी धन है इस संसार का, जिसको पाने के बाद और कोई धन प्राप्त करने की न तो कभी कोई इच्छा हो सकती है न कोई अधूरी कामना रह सकती है। वह ही परमधन है जिसको प्राप्त करने के बाद समस्त इच्छाएं शांत हो जाती हैं समस्त प्रश्न शांत हो जाते हैं। समस्त अज्ञान दूर हो जाता है। परम शान्ति प्राप्त होती है। संसार का स्वरूप जानने के लिए इस संसार पर ध्यान करने का कहते हैं, कहते हैं कि इस ब्रह्माण्ड पर आप ध्यान करो, कैसे करो?, मात्र एक शब्द में इसका रहस्य छुपा है वह है जागरूकता। जागरूकता ही आपके समस्त व्यक्तित्व को बदल सकती है, आपके भीतर जो चल रहा है, आपके मन पर, मस्तिष्क पर जो संसार छाया हुआ है, आपके हृदय में ढेर सारी ग्रंथियाँ हैं, ढेर सारी कामनायें जो हमने बड़ी बड़ी पाल रखी हैं, जिनका इस जीवन में पूरा हो पाना ही असंभव जैसा है। अगर कुछ कामनायें पूरी हो भी जाती हैं तो दोगुना नयी कामनायें जन्म ले लेती हैं। शरीर छोड़ते समय इनका अधूरा रहना स्वाभाविक ही है। ये अधूरी कामनायें हमारे संसार चक्र का कारण है। जब तक ये ग्रंथियाँ नहीं खुलती हैं,तब तक हमारा जीवन व्यर्थ है क्योंकि हम फिर जन्म मृत्यु के चक्कर में पड़ जायेंगे, कभी भी इससे छुटकारा नहीं मिल पायेगा। ज्ञान याने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से उन ग्रंथियों से

छुटकारा मिल जाता है। इसके लिए एक ही शब्द पर्याप्त है 'जागरूकता', जब आप कुछ भी देखें तो उसमें शिव के दर्शन करें चाहे एक पुष्प देखें तो शिव के दर्शन करें, शिव की मूर्ति देखें तो शिव के दर्शन करें अगर आप कही पत्थर भी देखें, कहीं झरना भी देखें, कहीं आकाश भी देखें, कहीं सौन्दर्य भी देखें, कहीं उगता सूरज देखें, कहीं ढलता सूरज देखें, कहीं मित्र को देखें, कहीं प्रतिस्पर्धी को देखें, कहीं दुश्मन को देखें सभी जगह शिवत्वता दिखाई देगी, जीवन में जो प्रियता है वह हमारे सद्कर्मों का फल है। जैसे हमको सुन्दर सी झांकी दिखाई देती है, किसी दिन संध्या का बड़ा सुन्दर सा दृश्य दिखाई देता है, कभी कभी हल्की हल्की बारिश हो रही है, बाहर का मौसम देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। कभी ठण्डा मौसम हो रहा है और हमको लगता है बड़ा अच्छा मौसम है, आज छुट्टी का दिन है, बड़ा आनंद आयेगा। यह सब आनंद हमारे सद्कर्मों का परिणाम है। और जीवन में अवांछित भी हमारे कर्मों का परिणाम है। व्यापार में घाटा हो गया, हमारी दुकान अच्छी नहीं चल रही ये सब भी हमारे कर्मों का परिणाम है। इन सब परिणामोंके जिम्मेदार हम स्वयं हैं। उन परिणामों के लिए अगर हम कहें कि भगवान् ने ऐसा किया, भगवान् ने चोर भेज दिया, भगवान् ने डाकू भेज दिया, नहीं भगवान् तो आपके भीतर बैठा है, आप डाकू बुलाओगे तो डाकू आयेगा, चोर बुलाओगे तो चोर आयेगा, दुःख बुलाओगे तो दुःख आयेगा, सुख बुलाओगे तो सुख आयेगा, ये सब हमारे आमंत्रित अतिथि हैं। हमारे जीवन में जितनी आपदायें आती हैं, खुशियाँ आती हैं, आनंद आता है, दुःख आता है, ये सब हमारे आमंत्रित हैं, ये सब हमारे मेहमान हैं। इस दृष्टि से जब हम देखेंगे और साथ ही साथ संसार में शिवत्वता की दृष्टि बनी रहे यही जागरूकता है। जब कभी भी हम काम धंधा दुकानदारी कर रहे हैं, नौकरी कर रहे हैं, अच्छा काम कर रहे हैं, बुरा काम कर रहे हैं, प्रत्येक जगह पर अगर जागरूकता बनी रहे, तो इस जागरूकता से हमें बोध हो सकता है। अगर हम इस बारे में जागरूक रहें कि जो कुछ है परमेश्वर शिव का स्वरूप है, उसका विकास

है, परमेश्वर शिव की शक्ति ही है, जिसे परशिव भी देख रहा है और मुझे भी उसी पर ध्यान करना है तो बोध हो जायेगा। इस संसार पर भगवान् भी तो वही नजर लगा कर देख रहा है देखो ये मैं हूँ। सारे संसार को देखकर शिव का विमर्श क्या है? "यह मैं हूँ यह मेरा विकास है, यह पृथ्वी बनाई, ये जीव जंतु बनाये, ये मनुष्य बनाये, ये चंद्रमा, ये सितारे, ये अंतरिक्ष नक्षत्र बनाये, ये सब मेरा ही रूप है", शिव इस तरह से सोचता है तो उस समस्त सृष्टि पर वह ध्यान करता है इसके द्वारा वह पहचानता है कि मैं कौन हूँ। हरेक की एक नैसर्गिक इच्छा होती है मतलब आधारभूत इच्छा होती है कि मैं अपने आपको जानूं और यही हमारी भी आन्तरिक इच्छा है। याने हम कई जन्मों से इसलिए प्यासे है कि हम अपने आपको जाने और जानते ही प्यास बुझ जाती है और हमेशा के लिए बुझ जाती है। हम अगर कई जन्मों से कई कामनाओं से पीड़ित हैं, कई वासनाओं से पीड़ित हैं, कई अधूरी इच्छाओं से पीड़ित हैं, तो उन अधूरी इच्छाओं का मूलस्वरूप एक ही है "मैं कौन हूँ"। ये हमारी गैर जानकारी ये अज्ञान, जो माया जनित है, वही कारण है हमारी अतृप्ति का और यही ज्ञान तृप्त कर देता है। परमेश्वर शिव इसी पर ध्यान करते हैं और हम भी उसी पर ध्यान करें इसलिए संसार से भागने का कोई कारण ही नहीं है। संसार में ही रहो, नैसर्गिक रूप से आपको जो काम मिला है उसको शिद्दत से करो, कमिटमेंट से करो, ईमानदारी से करों क्योंकि जब बईमानी करोगे तो आपकी दौड़ संसार की दिशा में बढ़ जायेगी। आप किसी काम में बेईमानी करोगे, जैसे आपको कुछ भी काम मिला है छोटे से छोटा काम हो सकता है लेकिन उस काम को जब आप अछूते रहकर करो, बिना किसी लिप्तता के करो तो वह आध्यात्मिकता का सीधा रास्ता है। लेकिन जैसे ही आप उसमें लिप्त होते हो, अपना संसारिक स्वार्थ साधते हो तो आपकी दौड़ संसार की दिशा में पक्की है। जब आप संसार में आये हो तो अछूते रहना आसान नहीं रहता। कोई इधर खींचता है, कोई उधर खींचता है, कई तरह के प्रलोभन हैं, कई तरह के मोह हैं और यही अज्ञान है। जब हम इन

सबसे बचकर निकल जाएं तभी चतुराई है। कबीरदासजी ने कहा था "जस की तस धर दीनी चदरिया दास कबीर जतन से ओढ़ी" क्योंकि उन्होंने एक ही बात कही जो कुछ मुझे मिला उसका नाम है चदरिया, मैंने चादर गन्दी नहीं की, उसमें एक दाग भी नहीं लगाया, सिर्फ उसको ओढ़ी और उसको करीने से तह करके रख दी और चला गया संसार से, उन्होंने प्रतिक रूप से सुन्दर बात कही। हमको जो जीवन मिला, अब हो सकता है चादर पहले से गन्दी मिली हो या बहुत साफ मिली हो, जैसी भी मिली मैंने तो उसको ओढ़ी और जस की तस वापस रख दी, मैंने अपनी तरफ से उसको कुछ नहीं किया, उसमें लिप्त नहीं हुआ, जैसी ली थी वैसी की वैसी वापस रख दी। ऐसे ही जीवन अगर हम जियें कि अब हमको जो कुछ नैसर्गिक रूप से मिला है उससे भागना भी नहीं है। चादर मिली तो दूर से खड़े हो जाएं ये चादर गन्दी है, ये चादर मैं तो ओढूं ही नहीं! यह संन्यास नहीं है। अगर संसार से भागना संन्यास होता तो आपके हृदय के अन्दर जो ग्रंथियाँ है उनके बिना खुले भी मोक्ष हो जाता, उनके बिना खुले भी परमेश्वर मिल जाता, लेकिन अगर ग्रंथियाँ नहीं खुलती हैं तो किसी गुफा में जाने के बाद भी संन्यास नहीं है और अगर ग्रंथियाँ खुल गई है तो फिर भागने की जरूरत क्या है? घर में भी संन्यास है, इसलिये संन्यास वह है जब आपके हृदय की ग्रंथियाँ खुली हों, नजर खुली हो और आप जागरूकता में जी रहे हों, निर्लिप्त जी रहे हों। किसी भी लिप्तता से परे हों, इस जिन्दगी को जैसा का वैसा छोड़ देना है, मेरी वजह से यहाँ पर कोई अशांति न हो, कोई उपद्रव न हो। जैसे अगर आप रात में १२ बजे घर लौटते हैं और घर वाले सब सो रहे हैं तो चुपचाप आ कर आप सो जाते हैं कि मेरी वजह से किसी को परेशानी न हो। वैसे ही योगी इस संसार में आता है और सोचता है कि मैं चुपचाप इस रास्ते से निकल जाऊँ, इस संसार में मेरी वजह से कोई दु:खी न हो, मेरी वजह से कोई परेशान न हो और मैं चुपचाप इस रास्ते से निकल जाऊँ तो उसी रास्ते का नाम है आध्यात्मिक राह। दूसरा **वही भैरव देवता है, भैरव देवता का मतलब है इस ब्रह्माण्ड का केंद्र। संसार चक्र में**

शिव ही सृष्टिकर्ता है, पालनहार है, संहारकर्ता है, वह स्वरूप को छिपाता है और अनुग्रह करता है, ये पांच कार्य शिव सतत करता है। अगर हमको पांच कार्य दे दें कि तुमको ब्रश करना है, स्नान करना है, कपड़े पहनना है, रिक्शा पकड़ना है और मंदिर जाना है। ये पांच कार्य हम एक साथ नहीं कर सकते। हमको इन पांच कार्यों को करने के लिये पहले एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा और अंततः पांचवा कार्य करना होगा क्योंकि हम समय और अन्तरिक्ष के अधीन हैं। हम क्रम का उल्लंघन नहीं कर सकते हैं क्योंकि हम समय के अधीन हैं। हम जो कुछ करते हैं समय के अधीन और अन्तरिक्ष के अधीन करते हैं। उसको हम क्रम क्रिया कहते हैं यह क्रम हमारी मज़बूरी हैं, क्रम हमारी सीमा हैं, इस सीमा का उल्लंघन हम नहीं कर सकते क्योंकि हम उस माया के क्षेत्र में हैं जहाँ पर कि अन्तरिक्ष और समय हमे एक निश्चित सीमा के बाहर आने से रोक देते हैं। परमेश्वर शिव के लिए इस क्रम की कोई आवश्यकता नहीं है, वह अक्रम रूप से कार्य करता है। वह पांच कार्य एक साथ करता है, सृष्टि करता है याने संसार की **रचना करता है**, संसार का **पालन करता है**, उसका **संहार करता है** वह अपने **स्वरूप को छिपाता है**। एक कंकर भी शिव है लेकिन हमको दिखाई नहीं देता, न वह कंकर जानता है कि मैं शिव हूँ, और **अनुग्रह करता है**, जब वह अनुग्रह करता है तब जीव की आँखें खुल जाती हैं वह जान जाता है कि मैं कौन हूँ। जब कोई जान ले कि मैं कौन हूँ तो ये शिव का अनुग्रह है। परमेश्वर शिव के अनुग्रह के बगैर हम नहीं जान पाते कि हम कौन हैं। और जैसे ही जानते हैं हम उसमें विलीन हो जाते हैं। **सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।** जिसको वह चाहता है कि तुम जान लो वह ही जान पाता है और उसको जानते ही वह जिसको जानना चाहता है वही हो जाता हैं! परमेश्वर को जानते ही वह परमेश्वर हो जाता है। परमेश्वर में हममें अभेद हो जाता है। शिव को शिव ही जान सकता है। उपनिषद् में एक उपाख्यान आता है, एक नमक का पुतला समुद्र की गहराई नापने गया तो समुद्र

ही बन गया क्योंकि उसमें और समुद्र में कोई भेद ही नहीं रहा! अब वह कैसे बताएगा कि समुद्र कैसा है और समुद्र कितना गहरा है। वह गया तो था गहराई नापने और उस गहराई में वह समुद्र ही बन गया ऐसे ही जब हम परमेश्वर शिव को जानते हैं तो हम परमेश्वर शिव से अभिन्न हो जाते हैं, उसमें विलीन हो जाते हैं। परमेश्वर शिव को जानने के लिए संसार में तीन तरीके हैं, एक है क्रिया, यज्ञ करते हैं, जप करते हैं, तीर्थाटन करते हैं ये क्रियाएं हैं, दूसरा है भक्ति जब हम परमेश्वर के रूप एवं गुणों से प्रेमकर स्वयं को समर्पित करते हैं, तीसरा है ज्ञान जिसमें हम परमेश्वर शिव और स्वयं की आत्मा को अभेदरूप में जानते हैं तथा समस्त सृष्टि को परमेश्वर के रूप में ही देखते हैं। तीनों रास्ते एक के बाद एक कुल मिलाकर हमें उसी महार्णव में विलीन करते हैं। जो क्रियात्मक है वह परमेश्वर की आराधना का अपर रूप है मतलब जो पर नहीं है जो अंतिम नहीं है। दूसरा जो हम भक्ति करते हैं वह आराधना का परापर रूप है याने अपर और पर के बीच का है। लेकिन जो ज्ञान है वह परस्वरूप है। पर अर्थात सर्वोच्च अथवा अंतिम जहाँ पर किसी तरह की कोई क्रिया नहीं है लेकिन प्रेम है जो असीम है। ज्ञानी का प्रेम विशाल है, पूरे ब्रह्माण्ड तक फैला हुआ है। उसके प्रेम के दायरे से बाहर कुछ भी नहीं है। ज्ञानी के प्रेम की कोई सीमा नहीं है। उस प्रेम में सब कुछ समा जाता है, सारा ब्रह्माण्ड समा जाता है। अब हम कहते हैं कि **सारी सृष्टि परमेश्वर के इस स्वरूप में ऐसे निर्मित है जैसे दर्पण में संसार का प्रतिबिम्ब।** अगर एक दर्पण यहाँ रखें तो आप सब उस दर्पण में दिखाई दोगे, दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है, दर्पण अगर टूट गया तो प्रतिबिम्ब भी टूट जायेंगा, दर्पण अगर विकृत हो तो प्रतिबिम्ब भी विकृत हो जायेगा। तो प्रतिबिम्ब और उस दर्पण में क्या अंतर है? कुछ अंतर नहीं है। ऐसे ही परमेश्वर शिव ने अपने स्वरूप में याने अपनी अस्तित्व के भीतर इस ब्रह्माण्ड की रचना की जो उससे अभिन्न है। अंतर यही है कि वहाँ पर जो दर्पण के अन्दर हमको दिखाई देता हैं वह बिम्ब बाहर है उस दर्पण से विलक्षण भी है लेकिन यहाँ पर

प्रतिबिम्ब है बिम्ब नहीं, अर्थात कोई और अलग वस्तु नहीं है जो उसमें प्रतिबिंबित हो जाये। जैसे दर्पण के अन्दर प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वैसे ही ब्रह्माण्ड परमेश्वर शिव के स्वरूप के अन्दर हैं, हम जो कुछ देख रहे हैं परमेश्वर शिव की शक्ति के सिवा कुछ भी नहीं है यह जागरूकता अगर सतत बनी रहे तो यह हमारा स्वभाव बन जाती है। इस जागरूकता में जीने वाला सतत ध्यान करता है। अगर हम कहें कि ध्यान कैसे करना है? तो सर्वोच्च स्थिति पर हमारे गुरुदेव हमको हमेशा कहते थे कुर्सी लगाकर ध्यान मत करो, आसन लगा कर ध्यान मत करो, ध्यान लगाना ही है तो खड़े खड़े, नहाते धोते, खाते पीते, दुकानदारी करते, काम धंधा करते ध्यान करो, तब ये जागरूकता बनी रहे और वह जागरूकता तुम्हारी एक क्षण न टूटे कि सब कुछ शिव है, वही ध्यान सर्वोच्च ध्यान है। वह जो हमारा दस पांच मिनिट, आधा घंटा, एक घंटे का जो ध्यान है वह ध्यान नहीं है। ध्यान वह है, जब आप पूरे ब्रह्माण्ड को सतत शिव रूप देखो, जानो भी और मानो भी, न केवल देखो बल्कि यह जागरूकता रहे, हम क्षण भर भूलें नहीं और यह मानें क्योंकि मानने का मतलब क्या है? हमारी क्रियाओं से, हमारे कर्मों से ये ज्ञान झलकना चाहिये। हम जब क्रियात्मक रूप से कुछ कार्य करते हैं तो हमारे अपने दर्शन और हमारे व्यवहार में एक साम्य होना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं है कि कोई गलत काम कर रहा है तो उसको गलत काम करने से रोकें नहीं, भाई ये कहते है ये शिव है, मैं भी शिव हूँ तो इसको गलत काम करने से रोकूं कैसे? अगर आपके यहाँ कोई चोरी करने आ जाये तो उसकी पूजा करने बैठ जाओगे कि भाई तुम तो शिव हो ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। व्यवहार दर्शन और अध्यात्म दर्शन दोनों में एक तालमेल चाहिये, संतुलन चाहिये और वह संतुलन कैसा होना चाहिये? अगर चोर आया है तो आपका कर्त्तव्य है उसको भगाओ, उसको पकड़ो, उसको पुलिस के हवाले कर दो लेकिन हृदय में प्रेम कभी कम न हो, हृदय के अन्दर आनंद कभी कम न हो, यह तभी संभव है जब आपकी जागरूकता सतत बनी रहे। सबकी नजर से

संसार को देखने की क्षमता होना चाहिए, यह कठिन जरूर है लेकिन असंभव नहीं है। हम इस बात को समझ लें कि हम कितना भी क्रोध कर लें, कितना भी अन्दर से भड़क लें इससे हमें कुछ नहीं मिलने वाला। चाहे अन्दर से क्रोध करते करते, चिढ़ करते मर जाएं तो भी हमको मिलना कुछ भी नहीं है और मिलेगा उससे जब हम प्रेम करते करते मर जायेंगे। प्रेम करते करते अगर जीवन समाप्त हो गया, आनंद लेते लेते जीवन समाप्त हो गया तभी जीवन की सार्थकता है। जीवन किसी का एक जैसा नहीं चलता, कुछ अच्छा मिलता है तो कुछ बुरा सहना पड़ता है। जो अच्छा है मेरा कर्म है, जो बुरा मुझे मिल रहा है वह भी मेरा ही कर्म है, लेकिन इसके बीच में मुझे वह करना है जो मेरा कर्तव्य है। मेरा अपना नैसर्गिक कर्तव्य से ध्यान नहीं हटे और उन नैसर्गिक कर्तव्यों को करते करते जो भी परिणाम हों वे मुझे स्वीकार हैं। यही हमारा कर्मयोग है। कृष्ण ने सिखाया है अर्जुन को कि जो कुछ है बस करते चले जाओ अपना नैसर्गिक कर्म मत भूलो। तुम, क्योंकि क्षत्रिय हो, भागो मत। चूँकि पांडव क्षत्रिय हैं और उनकी यह जिम्मेदारी है कि नागरिकों के लिए सुशासन को स्थापित करना है, आततायियों से उनकी रक्षा करना है, तो इस नैसर्गिक कर्तव्य से कैसे भाग सकते हो? बहुत लोगो के यहाँ पर गलत निष्कर्ष हैं। लोग कहते हैं कि कृष्ण ने लड़ाई करवा दी अन्यथा अर्जुन तो संन्यास ले रहा था! सचमुच में यह भागना संन्यास नहीं है। अपने कर्त्तव्य कर्म को करते हुए परिणाम के मोह से मुक्त होना ही संन्यास है। और भी भ्रांतियाँ हैं कि कृष्ण के अनुसार किसी वर्ग विशेष को ही बोध का अधिकार है। परमेश्वर बोध की अधिकारी सम्पूर्ण मानव जाति है। बिना किसी वर्ण भेद के, हमे अपने नैसर्गिक कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिये। हमको संसार ने जो कार्य दे रखा है उस काम को ईमानदारी और प्रतिबद्धता से करें और इस कार्य के परिणाम में हमें कोई मोह न हो, कोई पूर्वाग्रह न हो यही संन्यास है। संन्यास के लिए न कमंडल उठाने की जरूरत है न घर से भागने की, न ही कुछ छोड़ने की। संन्यास वह है जब हम जागरूकता से जिएं और हमारी दृष्टि इस

संसार में शिवदर्शन की रहे। हम पूरे ब्रह्माण्ड पर ध्यान करें। जब बोलें तो जो बोल रहा है, उस बोलने वाले पर जागरूकता रहे, इसी को अध्यात्म में साक्षीभाव कहते हैं। साक्षीभाव के नाम से बहुत ज्यादा समझ में नहीं आता, साक्षी भाव क्या है? क्या घर के बाहर खड़े होकर देखना है कि मेरे घर पर क्या हो रहा है? ये साक्षीभाव नहीं है, साक्षी भाव वह है कि संसार में जो कुछ चल रहा है उसमें मुझे निस्पृह होकर बिना किसी लिप्तता के संसार के रास्ते पर चलते जाना है और संसार में जो कुछ हो रहा है उसको निर्लिप्त भाव से आनंद मग्न होकर देखना है। मेरे साथ अच्छा हो रहा है, बुरा हो रहा है वे मेरे कर्मफल हैं। उन सबके बीच में भी मुझे शिव दृष्टि बनाये रखना है, जो कुछ है संसार में परमशिव के सिवाय कुछ और है ही नहीं। यह भावना जब हृदय में पल्लवित हो जाती है, धीरे धीरे परिपक्व हो जाती है, बोध अपने आप आ जाता है। हम चार श्लोक अभी तक पढ़ चुके हैं, अगले श्लोकों का आगे अध्ययन जारी रखेंगे इस तरह से अगर हम अपनी जिन्दगी में मात्र जागरूकता बनाये रखें तो हमको न कुछ छोड़ने की जरूरत है, न कुछ पकड़ने की जरूरत है, न कहीं जाने की जरूरत है। हम जहाँ हैं जैसे हैं जो कर रहे हैं वह सब कुछ करते करते परमेश्वर शिव का बोध पा सकते हैं, जो हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। अपने स्वरूप को जानने के लिए हम अधिकार लेकर ही पैदा हुए हैं। हम अन्दर से क्या बोल रहे हैं, ये बोल जो निकल रहे हैं या कोई भी क्रिया जो हो रही है, हर व्यक्ति के साथ, वह क्या है? वह परमेश्वर शिव ही कर रहा है वरना ये मिट्टी तो कोई क्रिया कर ही नहीं सकती। ये चमड़ी की जिह्वा कुछ बोल ही नहीं सकती। जीव जो कुछ करता प्रतीत हो रहा है, परमेश्वर शिव अन्दर से कर रहा है। वही शब्द को गढ़ता है, बाहर व्यक्त करता है वे शब्द ही बाहर निकलते है। हम संसार को क्रियारत देखते हैं, नदी बह रही है, सूरज तप रहा है, चंद्रमा की ठंडी चांदनी निखर रही है, बारिश हो रही है, ये सब शिव की क्रियाएं हैं और उसमें उसी क्रिया शक्ति के दर्शन करें। संसार की यह समस्त हलचल परमेश्वर शिव की ये क्रियाएं हैं जो

अपने आपको प्रकट करने के लिए उसने की हैं। यह जागरूकता अगर बनी रहे, यह जानकारी हमसे पल भर न छूटे तो हमारा अध्यात्म का रास्ता अपने आप प्रशस्त होता चला जाता है। गुरु नारायण ----

बोधपञ्चदशिका पाठ ४

आज दिनांक २१ दिसम्बर २०१७ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। बोधपञ्चदशिका पढ़ने के क्रम में हम पिछले दो सप्ताह में चार सूत्रों पर चर्चा कर चुके हैं। शुरू में हमने चर्चा की थी कि परमेश्वर शिव प्रकाश स्वरूप हैं और उस प्रकाश को और कोई प्रकाश न तो मद्धिम कर सकता है और न आवृत्त कर सकता सकता है। परमेश्वर शिव हर जीव और हर जड़ वस्तु, हर विचार, कल्पना, सब कुछ का अंतिम सत्य है। अगर कोई काल्पनिक वस्तु भी है तो वह परमेश्वर शिव के प्रकाश से प्रकाशित है। हम कहें कि संसार में ऐसी वस्तु हो ही नहीं सकती लेकिन परमेश्वर शिव के स्वभाव में वह वस्तु है अन्यथा वह चीज कल्पना में भी नहीं आ सकती। वह वस्तु अगर कल्पना में भी आती है तो परमेश्वर शिव के स्वभाव में पहले से है। चाहे कंकर पत्थर हों, चाहे जीव जंतु हों, सब में परमेश्वर शिव का प्रकाश बराबर है। आगे जैसे हम उसको विस्तार से और समझेंगे कि परमेश्वर शिव एक पत्थर के रूप में भी हैं, एक जीव के रूप में भी हैं, एक मनुष्य के रूप में भी हैं, अन्तरिक्ष के रूप में भी हैं और समय के रूप में भी हैं, उन सबमे एक साथ आनंद लेते हैं और सबसे विलक्षण भी हैं। शिव इन सबसे अलग भी हैं और इन सब रूपों में भी हैं, लेकिन एक पत्थर एक पत्थर ही है, वह साथ में मनुष्य, पक्षी या पुष्प नहीं बन सकता वह तो अज्ञान की एक स्थिति है जब वह जड़ स्थिति में है, और ज्ञान की स्थिति में पत्थर में, पुष्प में और मनुष्य में कोई

अंतर नहीं है। इस समय सब कुछ परमेश्वर शिव से उत्पन्न है और सब कुछ परमेश्वर शिव है। इस तरह दो दृष्टियाँ हैं - ज्ञान की दृष्टि से पूरा ब्रह्माण्ड एक इकाई है इसमें पत्थर हैं चाहे जीव जंतु हैं, चाहे पुष्प हैं, चाहे वन है और यहाँ तक कि समय और अन्तरिक्ष भी सब एक ही स्रोत से निकलने के कारण अभिन्न हैं। जैसे एक यंत्र के भिन्न भिन्न हिस्से सब मिलकर एक यंत्र को सुचारू रूप से काम करने लायक बनाते हैं। ऐसे ही ये सब संसार नामक यंत्र के भिन्न भिन्न हिस्से हैं। ये ज्ञान की दृष्टि है। अज्ञान दृष्टि ये है कि मैं मैं हूँ बस चमड़ी के भीतर मैं हूँ और बाकी संसार मुझसे अलग है। प्रमेय संसार मुझसे अलग है, एक पत्थर मात्र पत्थर है उसमें और कुछ भी नहीं। इस तरह दो दृष्टियाँ भिन्न भिन्न हैं, ज्ञान की और अज्ञान की दृष्टि। दूसरी बात जो हमने जानी थी कि ये समस्त सृष्टि शिव का ही स्वरूप है और समस्त सृष्टि शिव के गौरव से ओत प्रोत है और हाँ जिसको हम सामान्य भाषा में समझने के लिए कहते हैं कि कण कण में भगवान् है तो इसके आगे कह सकते हैं कि कण कण भगवान् है और किसी कण को जानने वाला भी भगवान् है। एक रत्ती एक कण भी ऐसा नहीं है जो परमेश्वर शिव न हो या वह शिव के प्रकाश से वंचित हो, शिव के प्रकाश से कुछ भी वंचित नहीं किया जा सकता क्योंकि हर वस्तु जो अस्तित्व में हैं, उसका सार रूप में तात्विक रूप में जो अंतिम परिचय है वह शिव है। संसार में सैकड़ो धर्म हैं, उन समस्त धर्मों का स्रोत भी एक वही सार्वभौम चेतना है। इसलिए परमेश्वर कोई एक धर्म का भगवान् नहीं है, वह समस्त सृष्टि का स्वामी है, वह हर जीव, हर जड़ वस्तुका स्वामी है। इसके नाम पर कोई वाद विवाद करने की आवश्यकता नहीं। चूँकि जो शैव लोग थे उन्होंने जब इस अवधारणा को विश्व में रखा तो उन्होंने उसका नाम परशिव रखा अगर हम और कोई नाम पसंद करें तो वह रख सकते हैं, नाम से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन यह तय है कि सर्वोच्च सत्ता, जो समस्त सृष्टि की स्वामी है, दो चार दस पांच नहीं हो सकती एक ही हो सकती है क्योंकि अगर दो होंगे तो उन दो में एक ही उच्चतम होगी दोनो बराबरी की नहीं

हो सकती। विश्व तभी चल सकता है। विश्व की अवधारणा तभी संभव है जब इसकी एक मात्र सत्ता स्वीकार की जाये। एक से अधिक सत्ताएं स्वीकार करने पर यह संसार बेतरतीब हो जायेगा। समस्त अस्तित्व का नाम प्रकाश है। ब्रह्माण्ड में जितना अस्तित्व है, अस्तित्व था या होगा, याने तीनों कालों में जो अस्तित्व का स्वरूप है वह परमेश्वर के सन्दर्भ में एक सा है। परमेश्वर शिव तीनों कालों में एक साथ हैं, शिव को अक्रम या विक्रम कहते हैं क्योंकि वह किसी क्रम के अधीन नहीं है। हम समय के साथ बंधे हुए हैं, इसके अलावा हम अन्तरिक्ष से बंधे हुए हैं, आज यहाँ पर हैं, तो घर पर नहीं हैं और घर पर हैं तो यहाँ पर नहीं हो सकते। समस्त सृष्टि उसका प्रसार है। कोई कहता है हम तो शक्ति की पूजा करते हैं, शिव की नहीं करते, हम तो शिव की पूजा करते है, शक्ति की नहीं करते। ये हमारी आरंभिक अवधारणाएं हैं, आरंभिक समझ के लिए ठीक हैं, लेकिन जैसे जैसे हमारी समझ परिपक्व होती है हमको समझ में आने लगता है कि ये दो अवधारणाएं नहीं हैं, शिव और शक्ति अभिन्न रूप से एक हैं। हम जो कर सकते हैं, वह करते हैं, तभी हम वह हैं जिस रूप में संसार हमको जानता है। इसलिए शिव भी अपनी शक्ति को परखते हैं। परमाणु बम बनता है तो परिक्षण करते हैं, देखना चाहते है कि परमाणु बम की कार्यशीलता बराबर है, उसमें शक्ति कितनी है और तकनीक कितनी सही है। हम शक्ति का परिक्षण किये बिना अपनी शक्ति को पहचान नहीं सकते इसलिए शिव ने भी अपने आप को पहचानना चाहा, विमर्श करना चाहा कि मैं कैसा हूँ या मुझमें कितनी शक्ति है, मैं क्या कर सकता हूँ। इसके लिये उन्होंने इच्छा की कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ उस अनेक होने के इस क्रम में ब्रह्माण्ड का विस्तार किया। वह चूँकि स्वातंत्र्य का स्वामी है उसकी किसी भी इच्छा पर कोई अंकुश संभव नहीं है। अंकुश भी आयेगा तो कहाँ से आएगा? अंकुश शक्ति भी लायेगा तो कहाँ से लायेगा? उसी स्वातंत्र्य से! इसलिए उसकी इच्छा का विरोध संभव नहीं था। यही कारण है कि उसने जब इच्छा की तो शक्ति इस विश्व को प्रकट करने

लगी, विश्व प्रकट हो गया, इस तरह उन्होंने अपनी शक्ति का निरीक्षण किया, मैं क्या हूँ? तो **सृष्टि समग्र रूप से शिव की शक्ति ही है। स्व स्वभाव को जानने के लिए शिव सृष्टि रचना करता है**, अगर वह स्वभाव में ही स्थित है तो अपने स्वभाव को कैसे पहचाने? कैसे जाने? बड़ी समझने की बात है। कुए में बैठा मेंढक कैसे जाने संसार कितना बड़ा है? परमेश्वर शिव ने इस सृष्टि की रचना क्यों की? मैं कौन हूँ यह जानने के लिए। यह उसका दिव्य खेल है। जैसे कोई बच्चा पत्थर फेंक कर देखता है कि मुझमें कितनी ताकत है? मैं कितनी दूर तक पत्थर फेंक सकता हूँ? कोई तैर कर देखता है कि मैं कितनी दूर तक तैर सकता हूँ, कोई दौड़ लगाता है हम कहें कि क्यों दौड़ लगा रहे हो, वहाँ कोई है क्या, किसको पकड़ना है, पकड़ना किसी को नहीं बस हमको तो दौड़ लगाना है, देखना है कि हममें कितनी शक्ति है, कहाँ तक दौड़ सकते हैं। यह परमेश्वर का दिव्य खेल था। यह खेल किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं था, खेल हम उसी को कहते हैं जब कोई उद्देश्य की प्राप्ति इसके पीछे नहीं है। हम कहते हैं कि हमको दुकान चलानी है तो हम उसको खेल नही कहते क्योंकि एक उद्देश्य जुड़ा हुआ है, हमको उससे धन कमाना है, इससे पैसे बचाने हैं, इससे हमको रोजी रोटी चलानी है। खेल तभी बोल सकते हैं जब वह आनंद के लिए किया जाये। कभी हम क्रिकेट खेलते हैं, गिल्ली डंडे खेलते हैं हम उसको खेल कहते हैं क्योंकि उसके पीछे किसी नियत उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती और यही कारण है कि आज कल के बहुत सारे खेल खेल नहीं रह गये, उनमें जबर्दस्त वित्तीय प्रथमिकताएँ प्रवेश कर गई हैं। लेकिन खेल वही है जो हम गली में क्रिकेट खेलते हैं, कबड्डी खेलते हैं, स्कूल में हॉकी खेलते हैं। वास्तव में खेल वह है जहाँ पर किसी प्रकार का कोई संसारिक लक्ष्य नहीं है। यहाँ पर हमारा एक ही लक्ष्य है कि बस खेलना और आनंद लेना। परमेश्वर शिव ने भी खेल की तरह इस सृष्टि का निर्माण किया। **शक्ति सतत विश्व चेतना को पाने को उत्सुक रहती है।** यह सृष्टि कैसी है? यह सृष्टि जहाँ से विकसित हुई है वापस वहीं

लौटना चाहती है। इस का नाम घर लौटने की तड़प है, नास्टेल्जिया है मतलब पूर्ववर्ती स्थिति में लौटने की चाह। जैसे एक बच्चा पढ़ने जाता है, कहीं कॉलेज में, दूसरे शहर में, तो उसके मन में हमेशा एक ही इच्छा बलवती होगी कि छुट्टी मिलते ही घर आ जाऊँ, कोई बाहर भी घुमने फिरने जाता है तो उसको लगता है मेरा काम निपटा कर सीधे घर आ जाऊँ, घर में आने के बाद उसे विश्राम मिलता है, शांति मिलती है। घर उसको कहते हैं जहाँ पर वह अन्यथा हमेशा उपलब्ध है, जिसको कहते हैं बाय डिफाल्ट। परमेश्वर शिव के स्वभाव में समस्त सृष्टि भिन्नता के रूप में विकसित हुई है, सृष्टि की लाँजिंग है, इच्छा है, तड़प है कि वह वापस शिव के स्वभाव से अभिन्न हो जाये। जो भिन्नता है वह हमारी मायाजनित दृष्टि की वजह से है अन्यथा भिन्नता कुछ भी नहीं है, सचमुच में भिन्नता है ही नहीं। ये भिन्नता हमारी दृष्टि में है और ये भिन्नता भी अपने आपको समाप्त करने की इच्छा रखती है। यहाँ पर अगर एक दर्पण हो उसमें आप सब दिखाई दे रहे हों लेकिन आप यहाँ पर कोई भी न हों तो कह सकते हैं कि यह दर्पण के स्वभाव के भीतर ही है, अथवा दर्पण में ही चित्रित है। परमेश्वर शिव की शक्ति या उसका स्वभाव, जिसको हम युनिवर्सल कांशसनेस या सार्वभौम ईश्वर चेतना कहते हैं, वही दर्पण है, उसी में हम सब समाये हुए हैं, सारी सृष्टि समाई है। इसलिए हम अभिन्न हैं क्योंकि उस चेतना से बाहर तो हम हैं ही नहीं, उस चेतना के भीतर हैं। हम ब्रह्माण्ड से बाहर नहीं जा सकते, जहाँ भी जायेंगे ब्रह्माण्ड के अन्दर ही जा सकते है, जैसे हमारे शरीर में रक्त है, उस रक्त की लाल रंग की कणिकाएँ होती हैं वे कितनी भी गोल गोल घुमें, हजारों किलोमीटर चल लें लेकिन रहेंगी शरीर के भीतर ही, ऐसे ही परमेश्वर शिव के स्वभाव में पूर्ण विश्व है। अंतरिक्ष वैज्ञानिकों की भी यह धारणा है कि अगर कोई एक सीधी रेखा में चलता चला जाये तो अंततः वहीं पर आ जयेगा जहाँ से वह चला था! उसका स्वभाव अगर दर्पण है तो हम सब उसमें प्रतिबिम्ब की तरह हैं, जो बाहर से आने वाले किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं है वरन निर्मित प्रतिबिम्ब

है। हम थोड़ा सा चिंतन करेंगे तो यह बात समझ में आ जायेगी कि परमेश्वर शिव के स्वभाव के भीतर हम सब उपस्थित हैं, उसकी शक्ति ने हमको रचा है, हम अपने स्वभाव को माया की वजह से भूल गये हैं। यह भूलने का क्रम भी शिव ने स्वयं के लिए रचा है कि मैं जब तक भूलूंगा नहीं उसको तो जानूँगा कैसे? इसको इस तरीके से समझें कि परमेश्वर शिव पूर्ण है, उसमें किसी तरह की कमी नहीं है, न उसको कोई आवश्यकता है, न कभी भूख लगती है, न कभी प्यास लगती है और वह पूर्ण आनंद में मग्न रहता है, इसके बावजूद उस आनंद का अनुभव उसको नहीं हो रहा। क्यों नहीं हो रहा? एक आनंद फिर भी उनसे दूर है! वह पूर्ण है, संसार के आनंद का स्वामी फिर भी एक आनंद उनसे दूर है वह है उस आनंद को प्राप्त करने का आनंद जो सदा उनके पास है उसको प्राप्त करने का आनंद वह कैसे पायेगा? भला मछली को स्नान का आनंद कैसे मिले? हम कल्पना करें कि उसके पास सब कुछ है न उसको भूख लगती है, न प्यास लगती है, न कोई अधूरापन महसूस होता है, न कोई अँधेरा है, न ही उसके लिए कोई चीज है जो उसको चाहिये जो उसके पास नहीं है। क्योंकि संसार में जो कुछ है वह भी उसका ही स्वरूप है फिर भी उनके पास एक चीज कहाँ से आएगी उस आनंद को प्राप्त करने का आनंद वह कहाँ से पायेगा? वह तो उनको सतत प्राप्त है। जब वह अपने स्वभाव को, अपने आनंद को अपने स्वरूप को कुछ देर के लिए भूल जाता है तो फिर उसे पुनः प्राप्त करने का आनंद उसको मिल सकता है। इसी को कहते हैं उन्मुखता। जब हम पूर्णता की और अग्रसर होते हैं तो उसका आनंद पूर्णता से भी बड़ा होता है। हम कहते हैं इंतजार का आनंद ही अलग है। पूर्णता प्राप्त करने के आनंद से भी बड़ा आनंद उस पूर्णता की प्रतीक्षा का है, पूर्णता की ओर अग्रसर होने का। खाना खाने के बाद तो तृप्ति मिलती है, लेकिन उससे बड़ी तृप्ति तब मिलती है जब भूख लगी हो और बस अभी १० मिनट बाद खाना आने वाला है, हम इंतजार कर रहे हैं। उस आनंद को प्राप्त करने का आनंद, उस आनंद की ओर अग्रसर होने का आनंद, शिव को अप्राप्त था क्योंकि उसको न

तो भूख लगती हैं, न प्यास, न कोई कमी है न कोई प्रतीक्षा है। वह आनंद सागर में सतत हो तो अपने आनंद को ही वह अनुभव नहीं कर सकता था! क्योंकि आनंद के अनुभव के लिए आनंद की कमी का अनुभव जरूरी है। बहुत काम करने के बाद ठन्डे ठन्डे पानी से स्नान का आनंद हम सब जानते हैं लेकिन एक मछली को तो यह अप्राप्त ही है। ये सत्य है कि बहुत धनवान को जो थोड़ा और मिल जाये तो वह आनंदित नहीं होगा, लेकिन कभी गरीबी देखी हो तो हर पैसा बड़ा आनंद देता है कि हाँ मिल गया, इतना आ गया बहुत जरूरत थी इसकी, भूख लगी हो तो हमको रोटी आनंद देती है, खूब पेट भरा हो और फिर कोई कहे एक मिठाई तो खा लो! अरे भाई जी मचला जायेगा, उल्टी हो जायेगी फिर वह आनंद खो गया। तो आनंद हमको तभी मिलता है जब हमने उस आनंद की कमी को देखा हो। बच्चे के लालन पालन में लोग एक बहुत बड़ी गलती करते हैं। उसको भूख लगने से पहले रोटी खिलाते हैं, छोटा सा होता है तभी से उसको दूध ठूंसना शुरू कर देते हैं। उस बच्चे को दूध से नफरत हो जाती है। ऐसा बालक इन्सान ही नहीं बन पाता है वह इन्सान इसलिए नहीं बन पाता क्योंकि उसने कभी उस आनंद की कमी का अनुभव नहीं किया। आनंद को अनुभव करने के लिए आनंद की अनुपस्थिति का अनुभव जरूरी है। यह हम सब के लिए सही है अगर हम भी जब किसी चीज की कमी का अनुभव करते हैं तो उसकी कीमत समझते हैं। अगर हमने उस चीज की कमी कभी अनुभव ही नहीं की, हम पैदा हुए जब से जो माँगा उससे ज्यादा मिला तो हमको किसी गरीब का दर्द समझ में नहीं आयेगा, क्या होता है गरीब, हम समझ ही नहीं पाएंगे, ये नहीं समझ पाएंगे कि अगर ये चीज न हो हमारे पास तो क्या होगा, हमारी संवेदना का विकास ही नहीं हो पायेगा। इसलिए एक अनुभव ऐसा है जो पूर्णता में उपलब्ध नहीं है। जैसे जो संवेदनशील गीतकार होते हैं, कवि होते हैं वे कैसे तुलना करते हैं किसी के सौन्दर्य की? चतुर्दशी के चन्द्र से तुलना करते है न कि पूर्णिमा के चन्द्र से। चतुर्दशी के चन्द्र में एक उत्साह है कि मैं तो अभी ओर बड़ा

होने वाला हूँ, अभी तो मैं ओर पूर्णता की ओर अग्रसर होऊंगा, अभी तो मेरी पूर्णता में थोड़ा सा अरसा बाकी है, मैं पूर्ण जैसा जरूर दिख रहा हूँ लेकिन अभी मेरी पूर्णता में थोड़ी सी कमी है, और मैं उस कमी को पूर्ण करने जा रहा हूँ, पूनम के चन्द्र में एक उदासी होती है, वहाँ और उन्नति की संभावनायें समाप्त हो गई हैं। तो चतुर्दशी के चन्द्र का आनंद ही अलग है, उसका आनंद अपूर्णता से पूर्णता की और अग्रसर होने का आनंद है। परमेश्वर ने इसी आनंद को प्राप्त करने के लिए अपने स्वभाव को भुलाया। इसीलिए माया की रचना की, हमारे मन में कई बार ऐसा प्रश्न आता है कि माया की रचना क्यों की? हम अपने स्वभाव को भूल गये, कि हम इस संसार में दुखी हो गये। अरे यही दुःख तो परमेश्वर को प्राप्त करने के सुख का जनक है। यह दुःख ही है जो हमको सुख के प्रति संवेदनशील बना देता है। शिव ने संसार में दुःख की रचना हमको सुख का अनुभव देने के लिए की और वह स्वयं अपूर्ण बना पूर्णता की ओर अग्रसर होने के लिए ओर इस पूर्णता की ओर अग्रसर होने में उसे इतना आनंद महसूस हुआ, इतना आनंद आया कि उसका आनंद अतिरेक से अतिप्रवाहित होने लगा क्योंकि उसने ये आनंद पहले नहीं देखा था, जब वह शिव रूप में महेश्वर के रूप में शांत बैठा था, आनंद सागर में नहा रहा था तब उसको वह आनंद नहीं आया था जितना आनंद अधूरे हो कर फिर से उस पूर्णता की ओर अग्रसर होने में आया तो वह इतना आनंदित हुआ कि इस संसार के खेल में रम गया और वह खूब नृत्य करने लगा। शिव के उसी नृत्य का नाम है संसार। इसी नृत्य के करण वह नटराज कहलाता है, उसको हम नट बोलते हैं, नट का मतलब है एक्टर जो एक्टिंग करता है, वह बताता है जो वह है ही नहीं और वह अपने किरदार में रम जाता है और भूल जाता है कि वास्तव में मैं कौन हूँ। हम ये भूल गये कि वास्तव में हम क्या हैं और हम एक मनुष्य का नट की तरह किरदार निभा रहे हैं, एक किरदार निभाते निभाते हम यह भूल जाते हैं कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है, जैसे कोई ६ माह के लिए रोजाना रामलीला में राम का किरदार करे तो वह अपने

आप को राम ही समझेगा लोग उसको राम समझने लग जाते हैं। अभी हमारे टीवी सिरीयल में कोई राम बनता है तो लोग उसके पैर छूने लग जाते हैं, क्योंकि वह उस किरदार के साथ एकमेव हो जाता है, अभिन्न हो जाता है। यही हमारी स्थिति है कि हम इस मनुष्य जन्म में मनुष्य के किरदार से अभिन्न हो गये हैं तो यही आनंद जो हमको प्राप्त है वह परमेश्वर शिव को भी प्राप्त नहीं था इसलिए उसने मनुष्य का रूप रखा और फिर इस मनुष्यता से शिवत्वता की ओर अग्रसर होने का आनंद प्राप्त करने के लिए योग किया। योगी उसी परम आनंद का अधिकारी है। शिव से अधिक आनंद उस योगी का है जो शिवत्वता की ओर अग्रसर हो रहा है और शिव से एक हो रहा है, शिव के आनंद से एक हो रहा है। शिव की प्रत्येक रचना अपने आप में पूर्ण है। एक पत्थर भी पूर्ण शिव है, एक संत भी पूर्ण शिव है और जो कुछ हमको दिखाई देता है चाहे वह ऋणात्मक किरदार हो, चाहे रावण का रोल कर रहा हो, चाहे वह विभीषण का रोल कर रहा हो, चाहे वह राम का अभिनय कर रहा हो, चाहे वह मंदोदरी का अभिनय कर रहा हो ये सभी किरदार हमको कुछ अच्छे लगते हैं, कुछ बुरे लगते हैं, कुछ मिश्रित हैं इन सभी किरदारों में नृत्य करने वाला एक ही नटराज है, वही परमशिव। इसलिए शिव सूत्र में एक सूत्र है "नर्तकात्मा" जो आत्मा है वही इन भिन्न भिन्न रूपों में नृत्य कर रही है। परमेश्वर शिवका जो नृत्य है वही आत्मा का नृत्य है। आत्मा और परमेश्वर शिव अभिन्न हैं, एक ही सत्ता के दो नाम हैं, आत्मा भी कह सकते हैं, उसको हम परमेश्वर भी कह सकते हैं। उसकी शक्ति इस संसार के रूप में विकसित है, वह भी उससे अभिन्न है याने एक ही इकाई है। संसार का विकास जैसे जैसे आगे बढ़ता है वैसे वैसे उसकी इच्छा होती है कि मैं फिर से एक हो जाऊँ और यह एक होने की इच्छा संसार में किस रूप में दिखाई देती है? प्रेम के रूप में दिखाई देती है, संसार में जितना प्रेम आपको दिखाई देता है, जो निश्छल प्रेम दिखाई देता है, जैसे सड़क पर कोई जा रहा है, एक बच्चा जा रहा है और उसके पैर में चप्पल नहीं हैं, आपके हृदयमें प्रेम उपजता है कि

इसको एक जोड़ी चप्पल ला देते हैं, यह उसी सनातन प्रेम का प्रतिबिम्ब है। उसके पीछे आपकी कोई सद्भावना, दुर्भावना या लालच कुछ भी नहीं है पर ऐसा लगता है कि इसके पैर जल रहे हैं, इसको एक जोड़ी चप्पल ला देते हैं और आप उसको कहीं से एक जोड़ी चप्पल लाकर पहना देते हैं। ये प्रेम किसी भी तरह से, किसी भी रूप से मोह नहीं है, न ये पाप है, न पुण्य है वरन प्रेम है और शुद्ध प्रेम है। **संसार में शक्ति ही है जो शिव से मिलना चाहती है। यह शुद्ध प्रेम जहाँ जहाँ हमको दिखाई दे समझना चाहिये कि शिव और शक्ति का प्रेम है। जब आप किसी अनजान बच्चे को प्रेम करते हैं, किसी अनजान व्यक्ति की बिना कारण सहायता करते हैं तो यही शिव शक्ति का प्रेम है।** एक प्रेम वह होता है जो हम स्वार्थ से करते हैं जो सोचते हैं आज इसको प्रेम कर लो तो कल ये हमारा कल्याण करेगा, बच्चे को लाड़ करो, कल हमारी सेवा करेगा। तो ये शुद्ध प्रेम नहीं है, शुद्ध प्रेम वह है जहाँ किसी तरह के प्रतिफल की इच्छा या संभावना नहीं है। जहाँ जहाँ निश्छल प्रेम है, शिव शक्ति का प्रेम है। **संसार रूप में शक्ति विकसित हो गयी लेकिन वह शक्ति वापस लौटना चाहती है, अपने सर्वस्व शिव के पास**। सर्वोच्च ईश्वर शिव सर्वव्याप्त है, ऐसी कहीं कोई जगह नहीं है जहाँ पर कि परमेश्वर शिव अनुपस्थित है। **शिव अपनी ही शक्ति से खेलने और गिरने में आनंदित होता है। शिव सृष्टि एवं संहार को अक्रम रूप में एक साथ करता है**, हम कुछ भी करते हैं तो हम एक क्रम से बंधे हुए हैं। एक पुस्तक पढ़ते हुए भी हमको एक क्रम का अनुसरण करना पड़ेगा, जिस शब्द को पढ़ना आरम्भ करेंगे उसकी सृष्टि होगी, पढ़ते हुए स्थिति होगी और जब दृष्टि अगले शब्द पर बढ़ेगी तब पूर्ववर्ती शब्द का संहार होगा, अगले शब्द की सृष्टि होगी। हम क्रम के अधीन हैं, जब तक हम अन्तरिक्ष और समय से बंधे हैं तब तक हम क्रम से मुक्त नहीं हैं। लेकिन वह विक्रम है, उसे किसी क्रम में नहीं बांधा जा सकता क्योंकि उसके अस्तित्व में जो सृष्टि बनी है उसमें सृष्टि, स्थिति, संहार सब एक साथ चल रहे हैं, वह समय से परे है और हम

समय से बंधे हैं इसीलिए ऐसा होता है कि बात बीत गई याद भी नहीं रही, जवानी तो पता ही नहीं लगा कि कब बीत गई, बुढ़ापे का एक दिन काटे कट नहीं रहा। बिस्तर पर पड़ें तो हमको समय का अहसास भिन्न होता है, कुछ दिन ऐसे होते हैं बेहोशी में चले जाते हैं, बचपन के, जवानी के जो तेजी से बीत जाते हैं, जो ख़ुशी के होते हैं। और उसके बाद ऐसा समय आता हैं जिसमें एक एक दिन बिताना मुश्किल होता है। तो यह सब कुछ समय की अधीनता सिद्ध करता है। हम समय के अधीन हैं और समय का अनुभव हम सबके लिये भिन्न भिन्न है। हम कहते हैं कि ब्रह्मा जी इतने वर्ष तक जीते हैं, लेकिन सब समय के अधीन हैं, क्योंकि वह भी अमर नहीं हैं, समय के अधीन हैं। जो जो समय के अधीन हैं वे जन्म लेते और मरते भी हैं। "पहले हम चित्र बनालें बाद में बाजार से रंग ले आयेंगे" ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि हम समय के अधीन हैं और वह समय से मुक्त है। क्योंकि रंग भी वही है, चित्र भी वही है, बाजार भी वही है और समय भी वही है। वह उसके स्वरूप के भीतर जब रचना करता है तो उसके लिये किसी भी क्रम की आवश्यकता नहीं है। वह इस खेल में इतना आनंदित होता है कि वह एक बच्चे की तरह नृत्य करने लगता है, खूब दौड़ लगाता है। आपने कभी छोटे बच्चे को देखा होगा, ५ वर्ष का बच्चा खूब दौड़ता है, हम कहते हैं कि मस्ती मत कर चोट लग जायेगी और सचमुच में उसका सर टकरा जाता है, सर पर चोट लगती है, फिर वह रोने लगता है। हम सब शिव स्वरूप हैं और उसी स्थिति में हैं, हम उन्ही बच्चों की तरह हैं जो नटखट हैं, खूब दौड़ते हैं, भागते हैं, लड़ते हैं और जब सर टकरा जाता है तो रोने बैठ जाते हैं, वही हमारी स्थिति है, वही शिव की स्थिति है। संसार में हमारी स्थिति बच्चों जैसी हो जाती है। जब हम खूब मजा लेते हैं, उस आनंद का, शिव की ओर अग्रसर होने के आनंद का। उस आनंद को अनुभव करते करते कई ठोकरें खाते हैं। बच्चे बार बार नदी में नहाने के लिए कूदते है और पुनः पुनः बाहर आ कर कूदते हैं, डॉल्फिन बार बार समुद्र से बाहर आ कर पुनः समुद्र में समा जाती है, बार बार सूर्योदय होता है

और अस्त हो जाता है, बार बार दुःख आते हैं और बीत जाते हैं, उनका बीतना ही सुख है, सुख और कुछ नहीं। सब कुछ बीत जाता है न सुख ठहरता है न ही दुःख, यही सार्वभौम नृत्य है, यही शिव का स्वभाव है और यही संसार है। संसार शिव के स्वभाव के भीतर है, उससे अभिन्न है, अपने खेल के लिए बनाया है, विस्मृति पैदा की ताकि स्मृति प्राप्त करने का आनंद ले सके, अगर विस्मृति नहीं होती तो स्मृति का आनंद कैसे होता। श्रीमद्भगवद्गीता के अंतिम अध्याय में कृष्ण की पूरी बात सुन कर अर्जुन कहते हैं: -

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥

हे कृष्ण! आपके अनुग्रह से मेरा मोह नष्ट हो गया, मेरी स्मृति जो नष्ट हो गयी थी वह फिर से मिल गयी, मैं संशय रहित हो गया हूँ तथा अब आपकी इच्छा के अनुसार आचरण करूंगा। वह कभी ये नहीं बोलते मुझे ज्ञान मिल गया, ज्ञान मिलता नहीं आत्मा का स्वरूप ज्ञान है, आवरण था वह हट गया, स्मृति चली गई थी वह आ गयी। इसलिए हम सब ज्ञानी हैं। ज्ञान हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हमारा ज्ञान हमारी आत्मा में सुरक्षित है, जैसे ही वह आवरण हटता है, जैसे ही हम अपने स्वरूप को पहचानते हैं, जैसे ही आत्मबोध होता है, समस्त ज्ञान हमको मालूम होता है वह तो पहले से ही है, अरे मैं इतना परेशान क्यों हो रहा था, खिड़की खोलते ही घर जगमगा उठा, ज्ञान को कहाँ ढूंढ रहा था? वह कहाँ मिलेगा, पहाड़ पर मिलेगा, गुफा में मिलेगा? लेकिन ज्ञान तो मेरा अपना वास्तविक स्वभाव है। हमने उस ज्ञान को आवृत्त कर रखा था, उसे बाहर ढूंढ रहे थे। जब हमको आत्मबोध होता है, जब अपने वास्तविक स्वभाव को पहचानते हैं तो मालूम पड़ता है कि यह पूर्ण ज्ञान अपने आप वहाँ पर पहले से ही है। हम सारे संसार में जिस चीज को खोजते हैं वह हमारा अपना वास्तविक स्वभाव है। कहते हैं कि कस्तूरी को ढूंढने के लिए मृग वन वन घूम आता है, यह सुगंध कहाँ से आ रही है? इस आनंद का स्रोत क्या है, खूब दौड़ लगाता है लेकिन उसको

यह नहीं मालूम कि इस सुगंध का स्रोत तो उसके अपने भीतर है। और यही स्थिति हमारी सबकी है। इस तरह से ये दोनों श्लोक हमको परमेश्वर शिव का स्वरूप बताते हैं। जब उसे जानते हैं उसके बाद जानने को कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। जैसे ही जानते हैं हमारी आँखे खुल जाती हैं, हम जागरूकता में जीने लगते हैं, हमारे हृदय में जो कड़वाहट है, क्रोध है, घृणा है, किसी के प्रति वैमनस्य, कोई बुरा है, कोई मुझे अच्छा नहीं लगता है, तो यह मेरा अपना है, यह तो बहुत अच्छा लगता है! ऐसी भावनायें सारी हट जाती हैं। सबके प्रति हृदय में एक प्रेम का निर्माण होता है। जो प्रेम हमारा वास्तविक अधिकार है और प्रेम वही है जो शक्ति और शिव के बीच में एक बंधन है, जो कभी भी अलग नहीं होता उसी का नाम इस संसार में प्रेम है। प्रेम ज्ञान मार्ग का सबसे बड़ा लक्षण है, आपके हृदय में अगर प्रेम नहीं है और आप बहुत अकड़ के बोलते हो कि मैं ज्ञानी हूँ तो वह ज्ञान शुष्क है, निर्जीव है, ऐसे ज्ञान की कोई कीमत नहीं है। कई लोग बोलते हैं कि ज्ञान मार्ग प्रेम से वंचित है, सचाई इससे उलट यह है कि ज्ञान में प्रेम सार्वभौम प्रेम है। ज्ञानी किसी एक रूप से प्यार नहीं करता, किसी एक व्यक्ति से या एक विद्या से प्रेम नहीं करता, एक स्थान से प्रेम नहीं करता वरन वह पूरे ब्रह्माण्ड को उसी प्रेम के आगोश में लेता है, उसे पूरे ब्रह्माण्ड के प्रति प्रेम जागृत होता है। इसलिए प्रेम की सर्वोच्च अवधारणा शुद्ध ज्ञान में है। जब हम अपना वास्तविक स्वरूप समझते हैं, शिव का वास्तविक स्वरूप समझते हैं, तभी हमारा प्रेम शाश्वत होता है। तो आज हमारी बात हम यहीं समाप्त करते हैं और इसके बाद अगले सप्ताह से इसी चर्चा को जारी रखेंगे। गुरु नारायण----------

बोधपञ्चदशिका- पाठ ५

आज दिनांक २८ दिसम्बर २०१७ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। आज वर्ष २०१७ का अंतिम गुरुवार है। आश्रम को अगले माह ८ वर्ष पूर्ण हो जायेंगे। तब से कार्यक्रम नियमित रूप से चल रहे हैं जब १० जनवरी २०१० को पूज्य गुरुदेव श्री हरिविलासजी आसोपा ने दीप प्रज्ज्वलित कर इस आश्रम का शुभारम्भ किया था।

हम अपने जीवन के लिए उसी परम चेतना पर निर्भर करते हैं, प्रत्येक जीव अपने जीवन के लिए उसी परम चेतना पर निर्भर करता है, इसलिए वह परम चेतना पर निर्भरता विश्व के कण कण की भी है और सब जीवों की भी है और न केवल इतना, अन्तरिक्ष और समय की भी है। इसी को कहते हैं परमेश्वर का प्रकाश स्वरूप क्योंकि वह सब कुछ को प्रकाशित करता है। हर चीज के दो पहलु होते हैं जब संसार बना तो एक पहलु से संसार नहीं बनता पुरुष पुरुष बनाया तो संसार नहीं बनता, स्त्री स्त्री बनाई तो संसार नहीं बनता, सुख सुख बनाया तो संसार नहीं बनता, संसार बनता है दो के मेल से, इसी का नाम है द्वैत। पुरुष बना तो स्त्री भी बनी, सुख बना तो दुःख भी बना, दिन बना तो रात भी बनी, अच्छा बना तो बुरा भी बना, मित्र बना तो दुश्मन भी बना इस तरह से हम हर चीज को एक पृष्ठभूमि में देख सकते हैं। सुख का अनुभव दुःख के बाद ही संभव है, निरपेक्ष रूप से सुख का अनुभव जिसको हम आनंद कहते हैं, मात्र शिव का स्वभाव है, अन्यथा हम दुःख को पाकर सुख का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, रात्रि हो तब प्रकाश का इंतजार होता है तब भोर का आनंद ले सकते हैं। संसार के सन्दर्भ में परशिव के दो पहलु हैं एक है प्रकाश यह उसका पुरुष हिस्सा है, दूसरा है स्त्रेण पहलु उसका नाम है विमर्श। यही माँ है, समस्त शक्ति का स्रोत।

आपको यहाँ जो आवाज सुनाई दे रही है वह भी माँ की ही वाणी है, उसी की शक्ति है। आपमें जो सुनने की शक्ति है वह भी उसी की शक्ति है। समस्त हलचल, पूरे विश्व की झांकी जो दिखाई दे रही है, वह समस्त झांकी उसमें जो झिलमिलाहट है वह परमेश्वर शिव की शक्ति है। परमेश्वर की शक्ति इसलिए पूर्ण है, क्योंकि उसकी शक्ति का कोई विरोध संभव ही नहीं है। इसलिए **परमेश्वर की शक्ति और इच्छा एक ही बात है, जब उसका कोई विरोध नहीं होता तो वह इच्छा स्वयमेव पूर्ण हो जाती है।** यह शिव की इच्छा शक्ति है। उसने ब्रह्माण्ड बनाया और वह बनाने में सफल था क्योंकि उसकी शक्ति का विरोध किसी और शक्ति द्वारा संभव नहीं था, वह जो चाहता था वह बना सकता था। फिर उसने ब्रह्माण्ड के सारे नियम बनाये, कई जीव बनाये, कुछ जड़ वस्तुयें बनायी, कुछ पुष्प बनाये, कुछ नदियाँ बनायीं, सितारे, अन्तरिक्ष और समय इन सबका निर्माण परशिव ने किया। तो इन समस्त रूपों में वह अकेला ही विराजमान है। माया की वजह से हम सीमितता का अनुभव करते हैं। स्वातंत्र्य शक्ति को शिव ने ब्रह्मांड बनाने के निमित्त माया के रूप में परिवर्तित कर दिया। माया पांच कंचुकों को जन्म देती है जो जीव की स्वतंत्रता को सीमित कर देते हैं, याने हमारे पास क्रिया शक्ति हैं लेकिन क्रिया की एक सीमित स्वतंत्रता है हमारे पास, इस सीमितता को **कला** कहते हैं, यह प्रथम कंचुक है। ज्ञान शक्ति है लेकिन एक सीमा है, उससे ज्यादा हम नहीं जान सकते, संसार के ज्ञान का अहंकार होता है लेकिन परमेश्वर के ज्ञान से, सत्य के ज्ञान से हम दूर कर दिए जाते हैं, यह भी माया का एक दूसरा कंचुक है जिसे **अशुद्ध विद्या** कहते हैं। तीसरी बात परमेश्वर शिव अपने आप में पूर्ण तृप्त है, उसे किसी वस्तु की कमी महसूस नहीं होती, उसके हृदय में राग नहीं है कि मुझे इस चीज की कमी है, क्योंकि समस्त वस्तुएँ उसके अस्तित्व में ही हैं पूरा ब्रह्माण्ड उसके अस्तित्व में है तो फिर उसको किस चीज की कमी हो सकती है? इसलिए उसमें राग नहीं है। हम **राग** से ग्रस्त हैं, हम अपने आपको सतत अधूरा महसूस करते हैं, हमको

लगता है कि यह मिल जाये तो मुझमें पूर्णता आ जाये। पूर्णता की खोज में पूरा जीवन बीत जाता है। अगर हम अंतर्चिंतन करें तो हमको लगेगा कि हमे सदैव कुछ न कुछ चाहिये, हम कभी भी पूर्ण संतुष्ट नहीं हो पाते, सारी संतुष्टि क्षणिक होती है। इसके अलावा हम समय से बंधे हैं, शिव समय से मुक्त है। हम आज वर्तमान में जी रहे हैं और एक स्थिर गति से समय में चल रहे हैं, हम न तो भूतकाल में जा सकते हैं, न उस गति से ज्यादा तेजी से भविष्य में जा सकते हैं, यह हमारा **काल** में सीमांकन है, परमेश्वर शिव तीनों कालों में एक साथ है, वह भूतकाल में भी है, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी है, उसके अन्तस में तीनों एक साथ समाये हुए हैं, लेकिन हम एक ही काल में बांध दिए गये हैं, इस तरह से हम काल के अधीन हैं और परमेश्वर शिव काल का स्वामी है, इसलिए उसको महाकाल कहते हैं। गुरुनानकजी उसको अकाल कहते हैं क्योंकि वह काल से परे है। इसके अलावा जो अंतिम पहलु है, परमेश्वर शिव का, वह है सर्वव्यापकता का और हम क्या हैं? **नियति** में बंधे हुए, नियति का मतलब होता है लिमिटेशन इन स्पेस अन्तरिक्ष के अन्दर हम बांध दिए गये, हम इस शरीर के अन्दर हैं, इस शरीर के बाहर नहीं जा पाते, अगर आज आप आश्रम में हैं तो अपने घर पर नहीं हो, आप एक साथ भिन्न भिन्न स्थानों पर नहीं हो सकते। इसके अलावा सांसारिक कार्य करण रिश्ता भी नियति के अधीन है। जैसे नीम के बीज से नीम का पेड़ ही उत्पन्न होगा जबकि नीम का पेड़, नीम का बीज और अन्य सभी पेड़ भी पारमार्थिक रूप से शिव ही हैं। संसार में एक निश्चित कारण से एक निश्चित कार्य की उत्पत्ति होती है यह भी नियति के कारण होता है। परमेश्वर एक साथ समस्त कालों में और समस्त अन्तरिक्ष में एक साथ अभिन्न रूप से है, लेकिन हम एक कालखंड में एक ही जगह हो सकते हैं, सब जगह एक साथ नहीं हो सकते, वही नीम का पेड़ बनता है तो वही बबूल का पेड़ बनता है, लेकिन संसार में दोनों के गुण एवं उत्पत्तियाँ भिन्न भिन्न प्रतीत होती हैं। इन पांच सीमितताओं ने शिव को मनुष्य बना दिया। इन पांच सीमांकनो के

बाहर हम आकर देख सकें तो सत्य दर्शन संभव है, ये पांच पट्टियाँ हैं हमारी आँखों पर, ये अज्ञान की पट्टियाँ हैं, जिनके लिए कबीरदास जी बोलते थे "घूँघट के पट खोल रे तुझे पिया मिलेंगे"। पिया याने परमेश्वर के दर्शन हमको तभी होंगे जब हम इन पांच पर्दों को हटायेंगे। सत्य के दर्शन प्राप्त करने के लिए इन सबके बाहर कैसे आया जाये, जब तक हम किसी चीज के रहस्य को नहीं जानते, तब तक हम उसके अधीन होते है, यह विश्व का नियम है। जैसे यदि आपको कार चलाते नहीं आती तो आप ड्रायवर के अधीन हैं। अगर आप जंगल में कार ले गये, लेकिन स्टेपनी बदलते नहीं आती, गाड़ी पंचर हो गयी, अब आप उसके अधीन हो, लेकिन अगर आपके पास उसकी कला है, ज्ञान है गाड़ी कैसे चलाई जाये, स्टेपनी कैसे बदली जाये तो फिर आप स्वतंत्र हो। ज्ञान स्वतंत्र कर देता है। हमको माया से मुक्ति चाहिये तो माया के रहस्य को जानना जरूरी है, जब हम माया के रहस्यों को जानेंगे तो माया से मुक्ति मिलेंगी। शिव सतत क्रियात्मक है वह कभी निष्क्रिय नहीं हो सकता उसकी क्रियाएं अक्रम क्रियाएं हैं। क्रियाओं में भेद हैं, कुछ क्रियाएँ हम करते हैं कुछ क्रियाएँ शिव करता है दोनों में क्या अंतर है? जानने में, करने में, व्यापकता में, तृप्ति तथा क्रमिकता में हर जगह उसका अंतर है। **शिव की क्रियाएँ अक्रम क्रियाएँ कहलाती हैं और हमारी क्रियाएँ क्रम क्रियाएँ हैं जो हम क्रमिक रूप से ही कर सकते हैं।** परमेश्वर शिव चूँकि वह तीनों कालों में बराबर से फैला हुआ है और अन्तरिक्ष उसका अपना ही स्वरूप है, अपना ही विकास है, इसलिए उसमें किसी क्रमिकता का होना संभव ही नहीं है, वह सब कुछ कर सकता है। भविष्य भूत और वर्तमान तीनों उसके अपने स्वरूप हैं इसलिए उसे किसी क्रमिकता की आवश्यकता नहीं। मनुष्य रूप में भी वह सीमित रूप से अक्रम क्रिया कर सकता है क्यूंकि चाहे माया के अधीन हो, है तो वह शिव ही। अगर मेरे दोनों हाथों की हथेलियों पर एकसाथ खुजली आती है तो मुझे यह नहीं सोचना पड़ेगा कि किसे पहले खुजाऊँ, दोनों हथेलियों को मिला कर अक्रम रूप से ये दोनों कार्य एकसाथ संपन्न कर सकता

हूँ! शिव पंच कृत्य करता है, सृष्टि रचता है, स्थिति करता है याने उसका पालन करता है, फिर उसका संहार करता है, सृष्टि, स्थिति और संहार ये उसके तीन मूल कृत्य हैं। इसके अलावा वह तिरोधान करता है याने अपने स्वरूप को छिपाता है, आपको दिखता है यह पत्थर है, यह मेरा मित्र है, यह मेरा दुश्मन है, यह व्यक्ति है, यह कुत्ता है, यह भविष्य की बात है, यह पुरानी बात है, हमको इनमें भिन्नतायें दिखाई देती हैं क्योंकि इनके असली स्वरूप को माया ने हमसे अलग कर दिया है, हम उसकी असलियत नहीं देख पा रहे हैं, हम अपने आप की असलियत नहीं देख पा रहे हैं। इस तरह से उसने अपने आपको आवृत्त कर रखा है, इसी का नाम है तिरोधान। पांचवां कृत्य है अनुग्रह जब वह आपकी आँख पर पड़ा पर्दा हटाएगा, जब वह पर्दा हटेगा तो आपको सत्य के दर्शन हो जायेंगे। परमेश्वर जब चाहें अपने शिवरूप को स्थगित कर पशु रूप में आ सकते हैं और जब चाहे अपने पशु रूप को स्थगित कर पुनः शिव रूप ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए यह प्रश्न कि अनुग्रह किस पर होता है? निरर्थक प्रश्न है। समस्त जीव उसके अपने अंग हैं जैसे आप चलना आरम्भ करते हो तब कौनसा पैर पहले आगे बढ़ाते हो, और क्यूँ? यह एक निरर्थक प्रश्न है क्योंकि दोनों पैर आपके ही अंग हैं। यह शैव दर्शन का अमृत सिद्धांत है। पांच कृत्य परमेश्वर शिव सतत अक्रम रूप से करता हैं। हमारी देखने की दृष्टि कैसी है इसको यहाँ समझ लेते हैं। शिव वनस्पति के रूप में है, वही एक चट्टान के रूप में है, वही स्त्री-पुरुष जीव-जन्तुओं के रूप में है, वही तारों के रूप में है, वही समय के रूप में है और वही अन्तरिक्ष के रूप में है। परमेश्वर ने ये सारे रूप एक साथ रख रखे हैं, ऐसा नहीं कि आज वह अन्तरिक्ष बन गया, कल समय बन गया तो परसों जीव बन गया। वह समस्त रूपों में अकेला ही एक साथ है, यह ज्ञान की दृष्टि है, शिव की दृष्टि से अगर हम देखें तो पत्थर भी शिव है मनुष्य भी शिव है, जमीन भी शिव है, भूत भी शिव है, वर्तमान भी शिव है और भविष्य भी शिव है। यह शिव की दृष्टि है। लेकिन अब हम एक चट्टान की दृष्टि से देखें वह मात्र चट्टान है, वह स्वयं शिव है

यह नहीं जान सकती क्योंकि वह जड़ है। जब मनुष्य अन्तरिक्ष को देखता है तो सोचता है यह तो बहुत विहंगम है, मैं तो एक अदना सा इन्सान हूँ! क्योंकि हम अपनी सीमा देखते हैं, हम उस शिवत्वता को नहीं देख पाते। समय, अन्तरिक्ष, तारे और जो कुछ भी अन्तरिक्ष में बना है, जीव-जंतु, जड़ चेतन यह सब कुछ अपने अपने रूप में स्थित हैं, एक चट्टान मनुष्य नहीं बन सकती, मनुष्य अन्तरिक्ष नहीं बन सकता लेकिन शिव एक साथ सब है, जब हम अज्ञान की दृष्टि से देखते हैं तो हमको समस्त सीमायें दिखाई देती हैं लेकिन जब ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं तो सबमें अभिन्नता दिखाई देती है। चट्टान भी मैं ही हूँ, शिव भी मैं हूँ, यह जीव भी मैं हूँ, भविष्य भी मैं हूँ, अन्तरिक्ष भी मैं हूँ तो हममें जो भिन्नतायें हैं वे समाप्त हो जाती हैं। यह तो देखने की दृष्टि का अंतर है। अब इस बात को एक उदाहरण से समझते हैं - एक समय में एक चट्टान बनी, एक पहाड़ बना, मान लो उस पहाड़ को बनने में १ हजार वर्ष लगे, जैसा कि हम जानते हैं यह जमीन स्थिर नहीं है, यह सतत चलायमान है, बीस करोड़ वर्षों पहले पूर्णभूमि एक ही स्थान पर एकत्रित थी जिसे पैनजिया कहते है, महाद्वीपीय मंद प्रवाह के होते इसके दो टुकड़े हुए लौरेसिया और गोंडवानालैंड। लारेसिया से उत्तर अमेरिका, एशिया और यूरोप बने दूसरा भूभाग गोंडवानालैंड दक्षिण में गया जिससे अफ्रिका दक्षिण अमेरिका अन्टार्कटिका, ऑस्ट्रेलिया आदि दक्षिण गोलार्ध के भूभाग बने। गोंडवानालैंड से एक टुकड़ा अलग हुआ जो भारतीय महाद्वीप था, यह मन्द प्रवाह के चलते उत्तर में गया और चीन के भूभाग से टकराया। इसी से हिमालय का आविर्भाव हुआ। हिमालय ऊपर उठता जा रहा है, आज भी प्रतिवर्ष कुछ सेंटीमीटर ऊपर उठता जा रहा है और यही कारण है कि हिमालय की तलहटी में भूकंप भी बहुत आते हैं, क्योंकि वह सतत चलायमान स्थिति में है। यही कारण है कि हिमालय के दोनों तरफ की संस्कृतियों में बहुत अंतर है। वहाँ जो जीवधारा आगे बढ़ी और जो इस धरती पर जीवधारा आगे बढ़ी दोनों भिन्न भिन्न रास्तो से आगे बढ़ी इसलिए वहाँ की

और यहाँ की संस्कृतियाँ बेहद भिन्न रही, इतने नजदीक होकर भी हमारी संस्कृतियाँ बहुत भिन्न हैं। हिमालय लाखों वर्षों में बना, समय के अधीन बना। कुछ लाख वर्षो बाद वह धूल में बदल जायेगा। प्रतिदिन उसका क्षरण हो रहा है, तेज हवा चलती है उसमें से कुछ पत्थर घर्षण की वजह से धूल में परिवर्तित हो जाते हैं, हम कहेंगे समय के अधीन यह पर्वत बना, पोषित हुआ फिर उसका संहार हो गया। सीमित दृष्टि से हम देखेंगे तो कहेंगे इतने लाख वर्षों में पहाड़ बना इतने लाख वर्ष रहा, फिर वह नष्ट हो गया। यह दृष्टि हमारी सीमित दृष्टि है। और असीम दृष्टि क्या है? असीम दृष्टि यह है कि जैसे ही पहाड़ बनना शुरू हुआ उसी क्षण उसका क्षरण भी शुरू हो गया। जिस पदार्थ से पहाड़ बना वह पहाड़ बनने के पहले भी शिव था और अब पहाड़ भी शिव रूप है, उसका क्षरण हुआ और जो धूल बनी वह भी शिव रूप है। इसलिए न कुछ बना न कुछ नष्ट हुआ, न कुछ पाया न कुछ खोया, शिव था शिव ही रहा। रामप्रसाद की मृत्यु हो गयी, अज्ञान की दृष्टि में हम कहते हैं अरे कल ही तो मैं उसे मिला था अचानक क्या हो गया? कल रामप्रसाद था अब नहीं रहा। लेकिन ज्ञान की दृष्टि में इस घटना को कैसे देखेंगे? रामप्रसाद जन्म के साथ ही मरना भी शुरु हो गया था, पहले शिव ने रामप्रसाद का रूप धरा फिर जब शिव ने चाहा रामप्रसाद को स्थगित कर पुनः शिव का रूप रख लिया, या हो सकता है अब शिव ने श्यामप्रसाद का रूप रख लिया या कोई और रूप रख लिया। इस ब्रह्माण्ड में कोई रत्तीभर अंतर नहीं आया, जो था वही है। इस तरह से हमको हजार जन्म के बाद, लाख जन्म के बाद भी जब ज्ञान की दृष्टि मिलती है, परमेश्वर की कृपा से, गुरु की कृपा से या गंभीर स्वाध्याय से, तो हमको इस बात का बोध होता है कि न हमने कुछ खोया न हमने कुछ पाया! हम जहाँ से चले थे, जैसे थे वैसे ही हैं, हमने न कुछ इस ब्रह्माण्ड में खोया न इस ब्रह्माण्ड में कुछ पाया और एक किरदार करके, एक खेल करके चले गये। अगर एक गाँव में रामलीला हो रही हो और आपको रावण का रोल दे दिया, एक को राम का रोल दे दिया, एक को सीताजी का रोल

दे दिया अब वे सब अपना अपना रोल करके घर चले गये। क्या तुम किसी कलाकार से पूछोगे कि "तुम क्या थे और क्या हो गये"? तो वह कहेगा "मैं जो था वही हूँ, मैं तो मात्र एक रोल करके आ गया, घूम फिर कर आ गया"। वैसे ही हम सबका भी एक किरदार है। परमेश्वर शिव अन्तरिक्ष का भी किरदार करते हैं, जीव जन्तुओ का भी किरदार करते हैं, भविष्य, भूत का भी किरदार करते हैं, समस्त जड़ चेतन जगत का भी किरदार करते हैं। वे एक महान अभिनेता हैं उससे बड़ा कोई अभिनेता नहीं है। ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा अभिनेता होने के कारण उसको नटराज कहते हैं। वह सबसे बड़ा अभिनयकर्ता है, और संसार में चहुँओर जो गतिविधियाँ दिखाई देती हैं, वह परमेश्वर शिव का नृत्य है। हमे नटराज की मुद्रा नृत्य करते हुए दिखाई देती है। जब कोई भी कलाकार नटराज का चित्र बनाता है तो नृत्य करती मुद्रा में बनता है। परमेश्वर का नृत्य कोई एक स्थान पर होने वाला नृत्य नहीं है, न यह अन्तरिक्ष में होने वाला, या स्वर्ग में होने वाला नृत्य है। हमारे सामने जो कुछ दिखाई दे रहा है यह परमेश्वर शिव का नृत्य ही है। यह कण कण के भीतर होने वाला नृत्य है। इन बातों को जानकर हमें एक बोध होता है, हृदय में एक असीम शांति, स्थिरता और मित्रता का भाव पैदा होता है, हृदय में प्रसन्नता के अलावा आत्मीयता का भाव भी पैदा होता है और यही प्रेम है। प्रेम और मोह में एक अंतर है, प्रेम समस्त को अपने में समाता है, मोह किसी छोटी सी वस्तु, जीव अथवा परिस्थिति के प्रति आकर्षण है। मोह बराबरी से किसी के प्रति घृणा भी साथ ही साथ पैदा करता है, क्योंकि हम जब लोन लेते है तो जैसे जैसे हमारे हाथ में कुछ धन आता है वैसे ही हाथ में ऋण भी आ जाता है। अब हमको इसे चुकाना भी है। लेकिन प्रेम आपको किसी का ऋणी नहीं बनाता क्योंकि यह परमेश्वर शिव का स्वभाव है। प्रेम सीमित वस्तुओं पर कभी नहीं हो सकता। इसी सन्दर्भ में हम कहते हैं कि ईश्वर प्रेम स्वरूप है। प्रेम ही परमेश्वर है यह हम तभी कह सकते हैं जब उस प्रेम का स्वरूप व्यापक हो, सार्वभौम हो, उसके दायरे के बाहर कुछ भी न हो, अपने वाले उस प्रेम के दायरे

में हों तो पराये भी हों, मित्र हों तो प्रतिस्पर्धी भी हों, स्वदेशी हों तो, विदेशी भी हों सभी अगर उस दायरे में आते हैं तभी वह वास्तव में प्रेम है, अन्यथा वह प्रेम है ही नहीं, वह मोह की सीमा में आ जायेगा। हमारा प्रेम तब हृदय में पल्लवित होता है जब हम परमेश्वर की रचना का रहस्य समझते हैं। क्या रहस्य है कि हमको कुछ अच्छा लगता है, कुछ बुरा लगता है, कुछ सीमायें महसूस होती हैं, कुछ हृदय में टीस पैदा होती है, कुछ पाने की इच्छा होती है, सतत हम अधुरा महसूस करते हैं, हम कुछ करना चाहते हैं वह हो नहीं पाता, जो होता है उस पर हमारा वश नहीं चलता, इन सब के बीच अगर हम इन सब बातों का रहस्य समझें तो हम असीम शांति से भर जायेंगे कि न कुछ खोया न कुछ पाया, न खोने को कुछ था न पाने को कुछ था, जो कुछ था एक ड्रामा था एक ऐसी स्थिति थी जिस स्थिति में हम लम्बे जीवन पर जीवन बिताते चले गये लेकिन हम उस खोज में शामिल ही न हो पाये। शायद अब उस खोज में शामिल होते ही हमको समझ में आने लगा कि हम जिसको खोज रहे थे बस आनंद मिल जाये, शांति मिल जाये, परेशान हो गया हूँ थोड़ा सुकून मिल जाये, तबीयत ख़राब है जरा ठीक हो जाये. हम सतत जिस चीज को खोज रहे थे वह हमारा स्वयं का वास्तविक स्वरूप था। हमारे अपने स्वभाव को खोजते खोजते हम पूरे संसार में घूम आते हैं, उसी को कहते हैं कस्तूरी मृग, सारी दुनिया में घूमता है पूरे जंगल जंगल में घूमता है लेकिन उसे यह समझ में नहीं आता है कि यह सुगंध आ कहाँ से रही है? वह जिधर देखता है, उसको लगता है इधर से ही आ रही है और वह बस उधर की तरफ चले जाता है, यही हमारी भटकन है। हम संसार में क्या नहीं खोजते, संसारिक वस्तुओं को खोजते हैं, इज्जत है, धन दौलत है, सुकून है, इसके अलावा हम भगवान् को खोजते हैं कि भगवान् मिल जाये। भगवान् को खोजेंगे कैसे? भगवान् ही भगवान् को खोजने निकलेगा तो कैसे मिलेगा? आप यह शरीर नहीं हैं, इस शरीर के अन्दर रहने वाले भगवान् हैं, यह शरीर जड़ है और आप चेतन हो, यह चैतन्य आपके वास्तविक अन्तस का नाम

है। आपके अन्दर के अन्दर के अन्दर आपका जो माह्ल है, **जो आपके अस्तित्व का केंद्र है, वही आपका वास्तविक परिचय है, वह परशिव के सिवा और कुछ हो भी नहीं सकता**। वही आपके अन्दर से टकसाल की तरह शब्द गढ़ता है, आपसे वह संसारिक कार्य करवाता है, लेकिन **यह काम जड़ शरीर तो कर ही नहीं सकता**। जब ब्रह्माण्ड बनाया तो सबसे पहले उसने प्राण का रूप लिया। प्राण ही शरीर को चलाता है। और प्राण क्या है? प्राण भी परमेश्वर शिव के सिवाय कुछ भी नहीं है, 'प्राक् संवित प्राणे परिणीता' अर्थात सर्व प्रथम संवित ने स्वयं को प्राण रूप में बदला। ईश्वरचेतना ही हमारा वास्तविक स्वरूप है। हमारी वास्तविक पहचान हमारा शरीर नहीं वरन वह चेतना है जो भीतर बैठकर शरीर को चला रही है, अगर हम थोड़ी देर के लिए अंतर्चिन्तन करें तो हमको यह समझ में आ जायेगा कि यह शरीर जड़ है, जब हम हाथ को कहते है उठो तो हाथ उठ जाता है, जिह्वा को कहते है कि बोलो तो जिह्वा बोलने लग जाती है, जब हम आँखों को कहते है कि बंद हो जाओ तो आंखे बंद हो जाती हैं। जब हम शरीर को कहते हैं कि सो जाओ तो शरीर सोने का उपक्रम करने लग जाता है। शरीर सचमुच जड़ है और प्राण जो संवित है उसको एक सीमा में स्वतंत्रता प्राप्त है। वह पूर्ण स्वतंत्र तो नहीं, जब तक यह शरीर में है तब तक उसको पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि उस स्वतंत्रता में इस शरीर की सीमायें शामिल हैं। लेकिन वह शरीर से मुक्त होगा पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है, कब? जबकि मरने से पहले हम अपनी वासनाओं से मुक्त हों, अन्यथा वासना पिंड फिर से नया शरीर धारण कर लेगा। जब तक हम अपने वास्तविक स्वरूप को आत्मा के रूप में, चैतन्य के रूप में नहीं जानेंगे तब तक हमें शरीर एक के बाद एक मिलते चले जायेंगे। मजेदार बात यह है कि संसार में अज्ञानवश हम अपने आपको खिलाड़ी समझने लगते हैं, मैंने उसको बिजनेस में पछाड़ दिया, मैंने इतनी उन्नति कर ली, मैं इतना बड़ा डॉक्टर बन गया, मैं इतना बड़ा व्यापारी बन गया, मैं इतना बड़ा आदमी बन गया, मैंने यह कर लिया, मैंने

वह कर लिया, क्योंकि हम अपने आपको खिलाड़ी समझते हैं। वास्तव में हम खिलौने बने रहते हैं, एक गेंद की तरह खेले जाते हैं, हमको इधर से उधर धकेला जाता है, हम लुढ़कते चले जाते हैं, ऐसा समझते हैं कि यह लुढ़कना ही हमारा गौरव है, इसी में हमारी शान है और इस तरह हम लुढ़कते चले जाते हैं। इसके कई उदहारण हैं जहाँ पर हम एक रेट रेस में भागते हैं, एक संसारिक दौड़ में भागते हैं कि खूब पैसा चाहिये, खूब सम्मान चाहिये, खूब पोलिटिकल पावर चाहिये, इन सब के पीछे हम भागते हैं तो हम उस गेंद की तरह लुढ़कते जाते हैं और हमारे ऊपर बैठी अज्ञाता माता बड़ी खुश होती है कि चले जा रहा है उस दिशा में जिधर इसको भेजना है मुझे, संसार चलाने के लिए इसके विवेक को अँधा करना था सो हो गया। लेकिन वही शक्ति, जब हम सत्य को जानते हैं, हमको शिव की तरफ ले जाती है। उस समय हम खिलाड़ी बन जाते हैं। वास्तविक खिलाड़ी हम तब बनते हैं जब हम उस शक्ति को अपने अधीन कर सकते हैं जो शक्ति हमसे गेंद की तरह खेल रही है। इस शक्ति से हम खिलौने की तरह खेले जा रहे हैं, अंधे होकर कामनाओं के रास्ते पर भागे चले जा रहे हैं, यह शक्ति हमको संसार के विकास की ओर ले जा रही है, कि अभी तो तुमको ओर जन्म लेना है, अभी तो तुम्हे कई काम करने हैं। लेकिन योगी अंतर्चेतना में इतना स्थिर हो जाता है, समझ जाता है कि इस अंधी दौड़ से मुझे अब बाहर आना है, अब मुझे वापस घर लौटना है। जैसे मेले में एक बच्चा सुबह से शाम तक बहुत मस्ती करता है लेकिन शाम को उसको लगता है अब अँधेरा होने लगा अब मुझे अपने घर लौट जाना चाहिये, घर की याद आने लगती है, ऐसे ही किसी जन्म में हमको अंतर्प्रेरणा होती है कि अब बहुत हो गया, अब मुझे अध्यात्म की जरूरत है, मुझे अपने आत्मबोध की जरूरत है, ताकि मैं घर लौट सकूँ। घर लौटने का रास्ता तभी मिलता है जब हम अपने स्वरूप को पहचानते हैं। इस वक्त मनुष्य जन्म में चाबी हमारे हाथ में है। यही समय है, चाबी हाथ से कब छुट जायेगी कह नहीं सकते। जब यह चाबी हाथ से गिर जायेगी उसके बाद हम पता नहीं कब

तक उस चाबी के लिए भटकते रहेंगे? हो सकता है लाखो जन्म लगें! जैसे योगी लोग कहते है ८४ लाख योनियों में भटकने के बाद फिर से आओगे, उस चाबी को पकड़ने के लिए। एक बूंद की नैसर्गिक इच्छा है कि वह फिर से समुद्र में जाकर मिल जाये, वही हमारी आन्तरिक इच्छा है स्वयं के स्रोत पर जाने की और यही अपूरित इच्छा समस्त दुखों का कारण है। हम शाश्वत रूप से चाहते हैं कि हम शिव में विलीन हो जायें हम परमेश्वर से एक हो जाएँ, जहाँ से हम चले थे, हमारे घर पहुँच जाएँ, लेकिन हमारी इस अंधी दौड़ में और दूर और दूर निकल जाते हैं,जब हृदय में इस बात की इच्छा जागृत होती है कि अब मुझे घर लौटना है, बहुत हो गया, बहुत दौड़ हो गयी अब मुझे घर लौटना है तो लौटने की प्रबल इच्छा होते ही वह शक्ति जो आपसे खिलौने की तरह खेल रही थी, आपको गेंद की तरह लुढ़का रही थी, वही शक्ति आपको ससम्मान शिव तक ले जाती है। क्योंकि वह शक्ति आपकी अनुगामिनी शक्ति है, आप शिव हो और वह आपकी स्वातंत्र्य शक्ति है। आप चाहो उसको वैसा उपयोग में ले सकते हो। आप अपने स्वभाव को भूल जाओ, अपनी शिवत्वता को भूल जाओ, इस जड़ शरीर को 'मैं' मान लो और उसके बाद इस संसार के खेल में शामिल हो जाओ तो वह शक्ति आपको संसार में ले जायेगी। शिव में ही वह क्षमता है जो अपने आपको भूल सकता है, अपने आपको भुलावे में डाल सकता है। वह एक चट्टान का रूप भी ले सकता है और उसमें भी आनंदित रह सकता है, एक पेड़ का रूप भी ले सकता है उसमें भी आनंदित रह सकता है, वह अन्तरिक्ष का रूप भी ले सकता है और उसमें भी आनंदित रह सकता है, उन समस्त रूपों में एक साथ रहकर आनंदित होता है और वही आनंद उसका वास्तविक स्वरूप है। परमेश्वर का आनंद उसका विमर्श है। परमेश्वर का जो विमर्श है उसमें चित, आनंद, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया शक्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा उसका अस्तित्व प्रकट है। ये समस्त शक्तियाँ उसी एक स्वातंत्र्य शक्ति की भिन्न भिन्न धाराएँ हैं। जब वह इच्छा करता है, इच्छा पूर्ण हो जाती है, वह संसार बनाना चाहता है संसार बन

जाता है, जैसे एक बच्चा रेत का टीला बनाता है अपने पैर पर खूब सारी रेत रखता है फिर पैर निकालता है तो देखता है एक बढ़िया घरौंदा बन गया, उस घरौंदे का वह आनंद लेता है। फिर उसको लगता है चलो दूसरा बनाते हैं तो वह पहले को मिटा कर फिर से नया घरौंदा बनाने लगता है, ऐसे ही संसार का खेल परमेश्वर शिव करते हैं, शिव देखना चाहते हैं कि मैं क्या कर सकता हूँ, वह ऐसा करके देखते हैं। चलो अब इसको बंद कर देते हैं, अब नया खेल खेलेंगे। इस खेल के दौरान शिव के साम्राज्य में वह अकेला ही राजा है और अकेला ही प्रजा है, वह समस्त किरदार वह स्वयं ही निभाता है। वह राजाका किरदार निभाता है, प्रजा का किरदार निभाता है, वह प्रजा के सुख सुविधा और दुखों का किरदार निभाता है। राज्य पर जो बाहर से आक्रमण होते हैं, या जो विरोधी हैं, उनका भी किरदार वह स्वयं ही निभाता है, इस तरह उसके साम्राज्य में उसके सिवा कोई दूसरा है ही नहीं। सर्वोच्च क्रिया मात्र शिव सम्पन्न कर सकता है। सर्वोच्च क्रिया मतलब अक्रम क्रिया जो सृष्टि, स्थिति, संहार इन तीनों को एक साथ कर सके, वह परमेश्वर शिव कर सकता है, वह अनुग्रह और तिरोधान भी एक साथ कर सकता है। आपकी आँखे खोल भी सकता है और उसी समय आपकी आंखे बंद भी कर सकता है, इस तरह वह निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र है। एकसाथ वह विश्व रूप भी है और विश्वोत्तीर्ण भी है। विश्वोत्तीर्ण रूप में उसकी स्वतंत्रता पर कोई ग्रहण लगना संभव नहीं है। **जड़ अवस्था अपना विकास संसार के अन्य रूपों में नहीं कर सकती, एक पत्थर चाहे कि मैं पुष्प बन जाऊँ, तो वह नहीं बन सकता क्यों क्योंकि वह उस जड़ अवस्था में है, उसकी सीमित चेतना की अवस्था में है, लेकिन जब शिव चाहे कि मैं पत्थर बन जाऊँ तो वह बन सकता है, साथ ही साथ मैं पुष्प बन जाऊँ, मनुष्य बन जाऊँ तो सब कुछ एकसाथ बन सकता है**, उसकी मौज, उसकी स्वतंत्रता पर कोई बाधा नहीं आती। जब हमको यह समझ में आता है कि पूरा ब्रह्माण्ड एक इकाई है, शिव का शरीर है, शिव का विकास है, वह जब चाहे

उसको समेट भी सकता है, शून्य आयाम में आ सकता है, जब चाहे वह बहुआयामी हो सकता है। हमको यह समझ में आने लगता है कि पूरे ब्रहमांड में हम एक पुर्जा हैं, जैसे कार में एक पुर्जा है उसके बिना काम नहीं चल सकता, अगर हम उसे अलग करने का सोचें तो कार कार नहीं रह जायेगी, इसलिए इस संसार का सबसे बड़ा आनंद है सहअस्तित्व, इस संसार का सबसे बड़ा आनंद है तालमेल, क्योंकि अगर ढोल ढोल हम पहले बजा लें फिर सारंगी को बाद में बजा लेंगे, नृत्य हम कल कर लेंगे तो न नृत्य का मजा आयेंगा, न ढोल का, न सारंगी का, मजा तब आएगा जब तीनों तालमेल में एक साथ हों। नृत्य भी हो तभी ढोल भी बजे और तभी अन्य वाद्य यंत्र भी बजें तो उसी तालमेल से हम उस नृत्य का आनंद ले सकते हैं। संसार भी एक नृत्य है, आनंद हमसे दूर इसलिए है क्योंकि हम संसार के साथ असहयोग करते हैं, संसार के साथ तालमेल करके नहीं चलते, लय ताल मिलाकर नहीं चलते और यही हमारी गलती है। जब अद्वैत समझ में आने लगता है तो हृदय प्रेम से भर जाता है। व्यक्ति अहंकार और पाखण्ड से शून्य हो जाता है, सबके साथ में बहुत प्यार से एवं सहयोगात्मक रूपसे कार्य करने लगता है, उसमें सबके प्रति एक अपनत्व का भाव पैदा हो जाता है और यही एक विश्व नागरिक की पहचान है। उसके हृदयमें भेद नहीं होता। कभी कभी लगता है कि ऐसे आदमी को दुनिया बेवकूफ बना देगी। लेकिन अद्वैत दर्शन के साथ हमको व्यवहार दर्शन में क्या करना है यह भी अध्यात्म बहुत अच्छी तरह से सिखाता है। हमको अपने संसारिक कर्तव्यो को सामाजिक मर्यादा में रहते हुए करना है। अद्वैत कायर या डरपोक नहीं बनाता वरन निडर और नैतिक रूप से साहसी बना देता है। आपने एक अपराधी को अपराध करते देखा, उसके विरुद्ध गवाही देना है तो अवश्य दीजिये, आप न्यायाधीश हैं आपको किसी को सजा देना है अवश्य दीजिये लेकिन आपके हृदय में गुस्सा न हो, पूर्वाग्रह न हो, वह सजा अपने कर्तव्य बोध से दें। यह हमारे अन्दर की बात है जो केवल हम जानते हैं, इसलिए कोई व्यक्ति

क्या कर रहा है, उस पर निगाह मत रखो। जब तक आप किसीके अंतस को पहचानते नहीं जब तक उसकी किसी भी क्रिया पर कोई भी टिप्पणी मत करो। आप कहेंगे यह तो बहुत बुरा काम कर रहा है, असामाजिक काम हो रहा है, यहाँ पर यह तो बहुत अच्छा काम कर रहा है, समाज कल्याण का काम कर रहा है लेकिन इन सबसे हटकर जब तक हम उसके अन्तस को नहीं जानेंगे तब तक हमें किसी पर टिप्पणी का अधिकार नहीं है। हो सकता है वह स्वार्थ की वजह से कर रहा है, उसको सामजिक प्रतिष्ठा बढ़ाना हो इसलिए यह सब कर रहा है। क्योंकि प्रेमवश किया गया कार्य ही परमेश्वर का कार्य है और प्रतिस्पर्धा के लिए किया गया कार्य, यश पाने के लिए किया गया कार्य, धन पाने को या सामाजिक स्थिति पाने के लिए किया गया कार्य परमेश्वर का कार्य नहीं, सांसारिक कार्य है, जिसमें कर्मफल जुड़ा है। प्रेम बिना अपेक्षा बिना शर्त होता है। कोई व्यक्ति ठण्ड में सोया है, मेरे पास दो कम्बल पड़े हैं एक उसे दे दूं क्योंकि उसकी ठण्ड को मैं महसूस कर रहा हूँ, यह एकदम ठीक है, लेकिन पचास कम्बल लो सब गरीबों में बाँटो, सावन का महीना है, अधिकमास है, हमको धर्म संग्रह करना है, तो वह ईश्वरीय कार्य नहीं है क्योंकि जो कार्य आप अपने स्वार्थवश करते हो वह ईश्वर के अनुकूल नहीं है और निस्वार्थ रूप से जो करते हो, अपना कर्तव्य बोध समझ कर करते हो, तो ही वह ईश्वर का कार्य है। अर्जुन अपने प्रतिद्वंदी का संहार भी करता है तो वह धार्मिक कार्य है क्योंकि अर्जुन जानता था कि इनका संहार करना मेरा कर्तव्य है। क्यों जानता था? क्योंकि गीता के ज्ञान के बाद लड़ाई शुरू हुई। लड़ाई पहले शुरू हो जाती और अर्जुन अगर उनका वध करने जाते तब सामने उनके गुरुजन खड़े थे, बड़े पिताजी खड़े थे, दादाजी खड़े थे तो उनका वध करने का पाप लगता, लेकिन वह जानता था कि इन रिश्तों का सत्य क्या है। उसको युद्ध पूर्व गीता का ज्ञान इसलिए दिया गया ताकि वह पाप पुण्य से परे हो कर अपने कर्तव्य का पालन करे और पाप के डर से भगोड़ा न बन जाये। ज्ञान के बाद युद्ध भी ईश्वरीय कार्य हो जाता है। कर्म बंधन से मुक्त होने के लिए अद्वैत

ज्ञान के सिवा दुनिया में कोई उपाय नहीं है। कृष्ण गीता भी अद्वैत ज्ञान है। अगर मेरी अंगुली मेरी आँख में चली गयी तो क्या यह अंगुली पापी हो जाती है? आँख भी मैं हूँ, अंगुली भी मैं ही हूँ, फिर कैसा अपराध? अगर मैं जानूँ कि यह अंगुली दूसरे की है तो मैं उस पर दावा ठोक दूंगा। इसने अंगुली मेरी आँख में डाली, मेरा झगड़ा शुरू हो जायेगा क्योंकि वह अलग है, मैं अलग हूँ। पाप पुण्य अथवा कर्मफल उत्पत्ति के लिए दो का होना आवश्यक है। इसलिए पाप पुण्य के पार जाना है तो हमको अद्वैत का बोध प्राप्त करना पड़ेगा। ब्रह्माण्ड एक इकाई है। इस ब्रह्माण्ड में मात्र "एक" ही है "'दो" हैं ही नहीं, यही अद्वैत की मूल भावना हमको पाप पुण्य के बंधन से मुक्त कर देती है। तभी उपनिषद कहते हैं "न पापम् न पुण्यम्" न पाप है न पुण्य है, लेकिन तब ही जब आप इस अद्वैत की भावना से ब्रह्म के साम्राज्य को समझ जाओ। जब तक आप यह समझते हो कि मैं मैं हूँ और तुम तुम हो तब तक पाप भी है और पुण्य भी। और जब तक पाप और पुण्य हैं तब तक कर्म हैं और जब तक कर्म हैं तब तक कर्म के बंधन हैं और जब तक कर्म के बंधन हैं तब तक पुनर्जन्म है और जब पुनर्जन्म है तो फिर से पाप और पुण्य के बंधन हैं, यही संसार चक्र है। इसलिए जब तक अद्वैत दृष्टि नहीं इस चक्रव्यूह के बाहर आना असंभव है। इसलिए मुक्ति के पहले ज्ञान होना जरूरी है, मुक्ति का मतलब होता है वह स्थिति जब हम अपने चैतन्य स्वरूप को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझें, चैतन्य ही मेरा वास्तविक परिचय है, शरीर मेरा परिचय नहीं है, नाम मेरा परिचय नहीं है, गाँव मेरा परिचय नहीं है, ये मेरे संसारिक परिचय हैं, सापेक्षिक परिचय हैं। इन परिचयों में भेद संभव है, बदलाव संभव है, मैं कहूँ कि मैं जवान हूँ लेकिन मैं हमेशा कैसे रहूँगा, मैं कहूँ कि मैं सुन्दर हूँ कल बदसूरत हो सकता हूँ इसलिए मेरे जितने संसारिक परिचय हैं, मेरे वास्तविक परिचय नहीं हैं, मेरा वास्तविक परिचय या मेरा पारमार्थिक परिचय है चैतन्य, उस परिचय को मेरे पास से कोई छीन नहीं सकता, न उसमें कोई बदलाव हो सकता है, यह मेरा अंतिम और वास्तविक परिचय है। उस

वास्तविक परिचय पर हम टिक जाते हैं और संसार को उस जगह बैठ कर देखते हैं कि यह मैं हूँ और यह मेरा संसार है, तो उस संसार को जैसे देखेंगे वैसे अपने शरीर को भी देखेंगे क्योंकि हम उसके पीछे चले गये अब हमारी दृष्टि वहाँ से शुरू होगी जहाँ पर हम हैं, अगर हम चमड़ी को अपना परिचय मानते हैं तो हमारी चमड़ी के बाहर दृष्टि शुरू होगी। तब चमड़ी के अन्दर मैं हूँ और बाहर संसार है यही बोध होगा। उस द्वैत के भ्रम का नाश करना कठिन हो जाता है। जब मेरे भीतर के भीतर के भी भीतर, जिसे माह्ला बोलते हैं, इस केंद्र में जब मैं स्थिर हो जाता हूँ, मेरे अस्तित्व में स्थिर हो जाता हूँ तो यही आत्मबोध है, यही केंद्र है जिस केंद्र पर जाने के लिए संसार की समस्त आध्यात्मिक गतिविधियाँ की जाती हैं। वही केंद्र है, वही विश्व चेतना है, वही परशिव हैं। हमारा प्रणाम है उस आंतरिक चैतन्य को जिस चैतन्य की वजह से यह समस्त अस्तित्व है। हम अपने मूल कारण को प्रणाम करते हैं, हमारे प्रथम और अंतिम कारण को प्रणाम करते हैं। हमारे पिता के पिता के पिता के पिता की श्रृंखला जहाँ समाप्त होती है, वहाँ पर हम प्रणाम करते हैं, हमारा प्रणाम हमारे आदि अस्तित्व को है, वही शिव है। शिव का वास्तविक स्वरूप आपके भीतर आपके अस्तित्व में है। उसको जब पहचानोगे तो समझ में आयेगा कि समस्त ब्रह्माण्ड उसी शिव का विकास है। जब हम इस भावना में रहेंगे तो जीवन पूरी तरह बदल जायेगा, जब हम बोलेंगे तो शिव की तरह, जब खाएंगे तो शिव की तरह, जब लड़ाई झगड़ा करेंगे तो भी शिव की तरह करेंगे। लड़ाई झगड़ा तो होता ही है इस हाथ का इस हाथ से भी होता है, कभी कभी इस हाथ पर मच्छर बैठ जाये तो हम इसको दूसरे हाथ से मारते है! तो लड़ाई झगड़ा तो होगा, बोल चाल होगी, प्रेम मोहब्बत होगी लेकिन वैसी होगी जैसा शिव करता है, वैसी नहीं होगी जैसे जीव करता है। जीव लड़ाई करता है तो खिसिया कर करता है, उसके हृदय में क्रोध पैदा होता है, प्रतिस्पर्धा पैदा होती है, घृणा पैदा होती है तब जाकर वह लड़ाई करता है और फिर हमारी लड़ाई भी दिव्य होगी, अर्जुन के युद्ध की तरह। जिसके हृदय में

क्रोध नहीं था, कर्तव्य बोध था। तो हम संसारिक कार्य सब करें, दुश्मन देश आक्रमण करे तो पूर्ण साहस और क्षमता से युद्ध भी करना है, लेकिन हृदय से वह प्रेम कभी समाप्त न हो, दृष्टि से शिव ओझल न हो, यही शिव सन्देश है। आज की हमारी बात यहीं समाप्त करते हैं। गुरु नारायण --------

बोधपञ्चदशिका पाठ ६

आज ४ जनवरी २०१८ गुरुवार का दिवस है, हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आपका स्वागत है। आप सब को नववर्ष की शुभकामनायें। नव वर्ष आप सब के लिए शुभ हो, आप सब स्वस्थ रहें, आप सबके हृदय में सदैव प्रेम पल्लवित हो और हम सब मिल जुल कर आश्रम के कार्यक्रमों को संचालित करते रहें इन्ही शुभेच्छाओं के साथ आज का कार्यक्रम आरंभ करते हैं। बोधपञ्चदशिका के अब तक के अध्ययन से हम समझ चुके हैं कि परमेश्वर प्रकाश स्वरूप हैं, उस प्रकाश को आवृत्त नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी भी आवरण का अस्तित्व भी उसी प्रकाश से है, अर्थात प्रकाश को प्रकाश से अलग करना असंभव है। कोई मेरे कपड़े चुरा सकता है, मेरा धन चुरा सकता है, मुझे मेरे घर से निकाल सकता है लेकिन कोई मुझसे मेरा स्वभाव नहीं चुरा सकता। शक्कर से मिठास को अलग नहीं कर सकता, क्या ऐसा कोई चोर है जो मिठास तो चुरा ले गया बस शक्कर वहीं छोड़ गया! सूर्य को रोशनी से अलग नहीं कर सकता, शिव को शक्ति से अलग नहीं कर सकता वैसे ही संसार को ईश्वर से अलग करना संभव नहीं है। ईश्वर और संसार अभिन्न हैं। तीसरी बात यह कि शिव पांच क्रियाएँ सतत तथा एकसाथ करता है अर्थात विपरीत सी प्रतीत होने वाली क्रियाएँ भी एकसाथ चलती हैं, यही उसकी अक्रमिकता है क्योंकि वह समय एवं अंतरिक्ष के बंधन से मुक्त है। वह सृष्टि एवं संहार की विपरीत क्रियाएँ एकसाथ करता है जिसको हम पिछली बार समझ चुके हैं कि एक पहाड़

के बनने की क्रिया, उसकी स्थिति तथा क्षय एकसाथ ही चलते हैं और ज्ञान की दृष्टि से कुछ भी नहीं हुआ। न कुछ बना न कुछ बिगड़ा, न कुछ पाया न कुछ खोया। शिव सतत समस्त रूपों में अभिव्यक्त हो कर सभी का एकसाथ आनंद लेता है जबकि प्रत्येक रचना अपने आप में सीमित है। एक सांसारिक उदाहरण से इसे समझने का प्रयास करते हैं। एक मनुष्य के रूप में हम अपनी आँख, नाक कान आदि का एकसाथ आनंद लेते हैं। यदि कान को आदेश दें कि इस पुष्प को सूंघ कर देखो तो वह इनकार कर देगा। नाक देखने से इनकार कर देगी तो आँख स्वाद लेने से इनकार कर देगी क्योंकि ये कार्य उनकी क्षमता में नहीं हैं। लेकिन मैं इन समस्त इन्द्रियों का स्वामी एकसाथ इन सब का आनंद लेता हूँ। शिव भी एक पुष्प के रूप में आनंदित हैं, एक चट्टान के रूप में आनंदित हैं, एक मनुष्य के रूप में आनंदित हैं तो समय, अंतरिक्ष, भूत, भविष्य, वर्तमान के रूप में भी आनंदित हैं। शिव समस्त रूपों में आनंदित है, वह एकसाथ अथवा क्रम से सभी रूपों में रह सकता है साथ ही उनका रूपांतरण भी कर सकता है। हम एक से दूसरा मनुष्य भी नहीं बन सकते, रामलाल हैं तो श्यामलाल नहीं बन सकते।

शिव अस्तित्व का मूल है। सृष्टि में अस्तित्व एक ही है, मूल एक ही है, सर्वोच्च सत्ता दो नहीं हो सकती, एक ही है। यहाँ उसका नाम शिव है आप उसे किसी भी नाम से पुकारो कुछ अंतर नहीं पड़ता। विशाल संख्या में जो जीव हैं उन सब रूपों में शिव एकसाथ आनंद ले रहा है, लेकिन एक मनुष्य स्वयं के स्वरूप से अनजान शिवानन्द से दूर है। शिव समस्त नियमों का निर्माता है और वह किसी भी नियम से बंधा नहीं है। प्रकृति के नियम जीवों के लिए बंधनकारक हैं लेकिन मुक्त परमेश्वर के लिए ये बंधन नहीं हैं। मनुष्य की समस्त क्रियाएँ एक क्रम का अनुसरण करती हैं, जैसे एक सेतु बना डेढ़ सौ वर्षों तक उपयोग में आया फिर जर्जर हो गया और किसी दिन टूट गया। याने डेढ़ वर्षों पहले उसकी सृष्टि हुई, इतने काल तक उसकी स्थिति रही तदन्तर उसका संहार हुआ। हमारे लिए यह उस सेतु का इतिहास है लेकिन शिव की दृष्टि से कुछ भी नहीं हुआ! पत्थर,

लोहा सीमेंट आदि के रूप में शिव ही था, सेतु के अवयवों के रूप में भी वही था और अंत में धूल बन गया, उस धूल के रूप में भी शिव शिव ही रहा। कोई उस पूल के निर्माण में मजदूरी करता है, कोई उस पर से गुजरा, कोई उस पर से नदी में गिरा। ये विभिन्न व्यक्ति अपने अपने कर्मानुकूल फल भोगते रहे जिनसे शिव निस्पृह बना रहा। पारमार्थिक दृष्टि से कुछ भी नहीं हुआ क्योंकि शिव सतत अपने स्वरूप में स्थित रहा जैसे मैंने अपनी एक जेब से रूपया निकाल कर अन्य जेब में रख दिया, न कुछ खोया न कुछ पाया। अगर यह जेब किसी दूसरे व्यक्ति की है तो मैं कहूँगा कि मैंने रूपया खो दिया लेकिन अगर दोनों जेबों का स्वामी मैं ही हूँ तो मैंने क्या खोया क्या पाया? मान लो कि ये जेबें व्यक्ति हैं, पहला जेब उद्दंड है, अक्सर उससे रुपये गिर जाते हैं तो जेब के स्वामी ने उसमें से रुपये निकाल कर अन्य जेब में रख दिए तब पहला जेब रोता है, मैं तो लुट गया और दूसरा कहता हैं इस समय तो ऊपर वाले ने छप्पर फाड़ कर धन दिया! शिव दृष्टि से कुछ भी नहीं हुआ, जेबों की तकलीफें उनके कर्मफल हैं। सारे गणित का महायोग शून्य है तभी तो यहाँ शिव को शून्य कहते हैं। समस्त समीकरणों का महाजोड़ शून्य ही होता है, संसार में जो विसंगतियाँ प्रतीत होती हैं वे अधूरे समीकरण हैं। हम इन्ही अधूरे समीकरणों के आधार पर संसार में भिन्नता देखते हैं, कभी कहते हैं 'हे ईश्वर! मेरे साथ ही ऐसा क्यूँ होता है?' अगर आप थोड़ा बहुत एकाउंटिंग जानते हैं तो आपने डबल एंट्री बुक कीपिंग या बही खाते का नाम सुना ही होगा। जब किसी को धन देते हैं तो एक खाते को क्रेडिट देते है याने उसमें से धन घटा देते हैं जिससे उसकी लेनदारी बढ़ जाती है और दूसरे खाते को डेबिट करते हैं याने उसमें धन जमा करते हैं और उसकी देनदारी बढ़ जाती है। अगर दोनों खातों के स्वामी आप ही हैं तो क्या होगा? न कुछ खोया न कुछ पाया। यही शिवदृष्टि है। संसार का व्यापार बस एक खेल है इस खेल में मात्र आनंद है। हमें भ्रम होता है कि संसार एक दिन बना था अभी चल रहा है और एक दिन प्रलय होगा तब इसके टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे। ऐसा नहीं है, यह

सृष्टि रचना सतत जारी है और इसका संहार भी साथ ही साथ हो रहा है। जब हम राधेश्याम बोलते हैं तो पहले शब्दांश 'राधे' की सृष्टि होती है तदन्तर जब 'श्याम' बोलते हैं तो पहले शब्दांश राधे का संहार होता है और दूसरे शब्दांश श्याम की सृष्टि होती है। इस तरह सृष्टि, स्थिति और संहार का कार्य सतत और साथ साथ चलता है। ये जो हमें संतुलन दिखाई देता है, एक्विलीब्रियम दिखाई देता है, जो स्थायित्व प्रतीत होता है वह हमारे इस छोटे से जीवन में दिखने वाले सृष्टि और संहार का संतुलन है। चूँकि यह एक महान समीकरण का छोटा सा अंश है इसलिए अक्सर असंतुलित अथवा अन्यायी प्रतीत होता है, तब व्यक्ति कहता है 'संसार में न्याय नहीं है', कोई थोड़ा बहुत आस्तिक होता है तो कहता है 'ऊपर वाले के न्याय में देर है लेकिन अंधेर नहीं है'। यह देरी उस समीकरण के संतुलन की स्थिति में आने की प्रतीक्षा है लेकिन यह समीकरण माया के अधीन रहने वाले जीव के लिए कभी संतुलित नहीं होता! और फिर वह कहता है 'यह संसार दुक्खालय है'। सत्य ही यह संसार ज्ञान के बगैर दुक्खालय ही है।

सृष्टि और संहार के मध्य संधिकाल में शुद्ध चेतना का अस्तित्व होता है। जब मैं शब्दांश 'राधे' बोल चुका और शब्दांश 'श्याम' अभी नहीं बोला तब उस संधिकाल में शुद्ध चेतना ही अस्तित्व में है। समुद्र में लहरें उठती हैं एक लहर का नाम है 'अ' वह एक स्थान पर ऊपर उठती है और विलीन हो जाती है पीछे से उसी स्थान पर दूसरी लहर उठती है 'आ'। जब पहली लहर उस स्थान पर नष्ट हो गयी और दूसरी अब उठने वाली है तब अस्तित्व में क्या है? शुद्ध समुद्र है, न 'अ' है न ही 'आ' है। और ये लहरें भी क्या है? समुद्र से अलग इनका कोई अस्तित्व है क्या? ऐसा ही संसार है जिसका इन लहरों की तरह अस्तित्व है और शिव से अलग कोई अस्तित्व नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण अपना विराट् रूप दिखाते हैं तब अर्जुन भयभीत हो जाता है। बड़े बड़े वीर उनके उदर में समा रहे थे नये नये जीव जन्म ले रहे थे। हम देखते हैं वह वीर नष्ट हो गया, उस बालक नें जन्म लिया। लेकिन कृष्ण की दृष्टि

में यह मात्र रूपांतरण है जैसे एक गहने को गला कर दूसरा गहना बनाने से स्वर्ण को कोई समस्या नहीं है मात्र रूपांतरण है। यह संसार तो परमेश्वर का आत्मविमर्श है, स्वयं का शक्तिपरिक्षण है। परिक्षण के बिना शक्ति की कोई प्रासंगिकता नहीं है। संसार परमेश्वर का आत्मबोध है। संसार के खेल के लिए वह स्वयं के स्वरूप को भूलता है, कोई और तो उसे भुलावे में डाल नहीं सकता क्योंकि वह अकेला ही है। माया जनित भुलावे में हम जीव हैं, और उस अज्ञान से परे हम शिव हैं। जब ज्ञान होता है तब यह बाहर से नहीं आता वरन भीतर से ही प्रकट होता है। जैसे मुझे लगा कि मेरा चाबी का गुच्छा खो गया है और उसे जगह जगह ढूँढ रहा हूँ लेकिन जब मिला तो पाया कि वह मेरी पतलून की पिछली जेब में था, वह तो कभी खोया ही नहीं था, बस मैं उसे नई जगह रख कर भूल गया था। तो फिर लोग जो परमेश्वर को खोजने का उपक्रम करते हैं वह क्या है? सत्य तो यह है कि ऐसा प्रयास मात्र आरंभिक रूप से मददगार है, इंस्ट्रुमेंटल है, लेकिन इसका भी महत्त्व है। कैसे महत्त्व है? माया के आगोश में सोया जीव अक्सर भोजन, निवास तथा भोग को पा कर अपने आप को कृतकृत्य समझने लगता है, तब परंपरागत रूप से प्राप्त संस्कार जैसे पूजा, मंदिर, तीर्थाटन आदि उसे इस बात का अहसास देते हैं कि कुछ और है जो इस जीवन को पूर्णता प्रदान करने हेतु अनिवार्य है। तभी उसे सत्य के अनुसंधान की प्राथमिक प्रेरणा मिलती है।

अन्तरप्रेरणा से अन्तर्ज्ञान से जो ऋषियों ने देखा था वह अमूल्य है, उन्होंने देखा था कि समय की निरपेक्ष सत्ता नहीं है, यह एक पत्थर की तरह जड़ है, अंतरिक्ष की तो बात ही नहीं होती थी। बीसवी सदी के आरंभ तक विज्ञान अंतरिक्ष के बारे में मौन था, अंतरिक्ष की ऋणात्मक सत्ता "याने कुछ नहीं का नाम अंतरिक्ष है", ऐसा माना जाता था। लेकिन कितने आश्चर्य की बात है कि भारतीय दर्शन में अंतरिक्ष पांच महाभूतों में सम्मिलित है अर्थात उसकी विधायक सत्ता को ऋषिगण तब जानते थे जब विज्ञान नहीं जानता था। यह बात बृहदारण्यक

उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयि संवाद में भी स्पष्टतः देखी जा सकती है। समय की सत्ता को बीसवी सदी के आरंभ तक भी निरपेक्ष माना जाता था अर्थात समय की अवधरणा समस्त जीवों के लिए एवं समस्त स्थानों पर एक जैसी मानी जाती थी। भारतीय दर्शन आरंभ से ही समय को सापेक्षिक मानता आया है। हम कहते हैं "मैं अगले सप्ताह तुम्हें मिलता हूँ इतनी देर में तुम्हें क्या अंतर पड़ेगा" लेकिन इतनी देर में मच्छर के तो दो जीवनकाल निकल सकते हैं, कुछ जीवाणुओं की कई पीढ़ियाँ बीत जाएँगी!

जब आइन्स्टीन ने समय एवं अंतरिक्ष की व्याख्या की तब यह बात विज्ञान ने भी मानी कि समय सापेक्षिक है और अंतरिक्ष की विधायक लेकिन सापेक्षिक सत्ता है तथा उसके गुण धर्म भी हैं। सापेक्षिक का मतलब होता है कि उसका अस्तित्व किसी अन्य सत्ता पर निर्भर है और उसमें परिवर्तन संभव है। विधायक सत्ता से तात्पर्य है कि यह एक सांसारिक वास्तविकता है। महज कल्पना, अभाव अथवा अवास्तविकता नहीं। जैसे प्रकाश की विधायक सत्ता है लेकिन अँधेरे की विधायक सत्ता नहीं, एक कमरे में उपस्थित भीड़ की विधायक सत्ता है लेकिन कमरे के खालीपन की नहीं। **प्रकट संसार की समस्त भिन्नता एक ही निरपेक्ष सत्ता पर आश्रित है जिसे हम परशिव कहते हैं**। अनीश्वरवादी दर्शन नहीं मानते कि आत्मा का अस्तित्व है, वे मात्र बुद्धि को ही 'मैं' की संज्ञा देते थे याने जो मेरी बुद्धि है वही मैं हूँ। वे स्वीकार नहीं करते थे कि मन बुद्धि के पीछे खड़ी कोई सत्ता है जो मन की भी स्वामी है, बुद्धि की भी स्वामी है। वे बुद्धि तक ही सीमित हो जाते थे। इस बात को खंडन करने के लिए उन्होंने इतनी सब बातें लिखीं कि इन सब का एक स्वामी है जो समय को, अंतरिक्ष को, मन को, बुद्धि को, अहंकार को, पत्थर को, पेड़ को, जीव-जंतु को, सबको अपने आँचल में समाये हुए है। जैसे मैं अपनी अंगुलीयों का, जिह्वा का, मेरे कानों का, मेरी वाणी का सबका स्वामी हूँ। ऐसे ही परमेश्वर शिव इस ब्रह्मांड के कण कण के स्वामी हैं और इन समस्त विभिन्न रूपों में इनका आनंद ले रहे हैं। जैसे मैं अपनी आँखों

को, हाथ पैरों को, कानों को उपयोग में लेता हूँ लेकिन इनमें से कोई अंग ऐसा नहीं है जिसकी मुझसे अलग कोई स्वतंत्र सत्ता हो। मुझसे अलग मेरे इन अंगों का कोई स्वतंत्र उपयोग नहीं है क्योंकि इस उपयोग के लिए एक उपयोगकर्ता आवश्यक है। ऐसे ही इस संसार के समस्त अवयवों का एक सार्वभौम उपयोगकर्ता होना ही चाहिये। जब यह बात हमें प्रथमतः मानसिक स्तर पर समझ आती है तदन्तर यह सत्य हमें रोमांचित कर देता है। यह रोमांच ही सत्य से प्रेम है। यह प्रेम जब पुष्ट होता है तब समस्त सृष्टि हमें शिव का मूर्तरूप प्रतीत होने लगती है। सतत चिंतन के बाद यह बात हमारे नाभि के स्तर तक उतर जाती है अर्थात बुद्धि, हृदय के बाद अब यह अस्तित्व के स्तर पर आ कर बोध बन जाती है। इस बोध में संसार का मोह, संसार की भागदौड़ एक बड़ी बाधा है। अगर हम वैचारिक स्तर पर सांसारिक महात्वाकांक्षाओं को परे धकेल सकें तो हमारी दृष्टि स्पष्ट होने लगती है, हमें जीवन की सीमितता का अहसास होने लगता है साथ ही जीवन एक अवसर की तरह प्रतीत होने लगता है जब जन्म-मृत्यु ज़रा-व्याधि के बंधन से मुक्ति की चाबी हमारे हाथ में है। अगर इस जीवन में हम शिव दृष्टि के लिए प्रयास आरंभ कर देते हैं तो यह हमारा सर्वोत्तम पुरुषार्थ है, अगर यह उद्देश्य इस जीवन में पूर्ण नहीं हो पाता है तो भी कोई हर्ज नहीं यह आने वाले जन्मों में पूर्ण हो जायेगा क्योंकि प्रत्येक अधूरा कार्य आने वाले जन्म में फिर से आरंभ हो जाता है। समस्या तो तब है जब हमने यह कार्य आरंभ ही नहीं किया, उस स्थिति में हमारी सांसारिक वासना, जो सदैव अपूरित होती है, आने वाले जन्मों में पुनः उसी संसारिक दौड़ में शामिल कर देगी। गुरु नारायण--

बोधपञ्चदशिका-पाठ ७

आज दिनांक ११ जनवरी २०१८ गुरुवार का दिवस है, और हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आप सभी का स्वागत है। और विशेष

बात यह है कि १० जनवरी २०१० को जो हमारा आश्रम शुरू हुआ था उसे ८ वर्ष पूरे हुए और इस आश्रम ने ९ वे वर्ष में प्रवेश कर लिया है। ये आप सब का सहयोग, आपका प्रेम और आप सबकी उपस्थिति का ही गौरव है। और गुरुदेव की कृपा की कोई सीमा नहीं। दूसरी बात हम बोधपञ्चदशिका के उत्तर खंड में आ गये, याने हम श्लोक संख्या ८ तक का अध्ययन कर चुके हैं। बोधपञ्चदशिका अत्यंत महत्वपूर्ण इसलिए है कि जब हमको कुछ थोड़ा सा आधारभूत अद्वैत का ज्ञान होता है उसके बाद में जो कमी होती है वह बोध की होती है। सबसे जरूरी है कि वह ज्ञान बोध के स्तर तक उतर जाये, याने हमारे कोर में, हमारे अंतरतम में, हमारे अस्तित्व में उतर जाये तब हमारा बोलना, चलना, व्यवहार, जीवन, उठना, बैठना सब कुछ उस परमेश्वर शिव के अनुकूल होता जाता है जो हमारा वास्तविक स्वरूप है। बोधपञ्चदशिका उस दिशा में बहुत तेजी से काम करती है। जहाँ अगर हमको थोड़ी भी रुचि है तो उसको तीव्रता से बोध की दिशा में ले जाती है। हमारी क्या स्थिति है, हम कौन है, हम क्या है, हमारे क्या कर्तव्य है? इसके बारे में आगे चर्चा होगी। अगर गहराई से अंतर्चिन्तन करेंगे तो समझ में आयेगा कि इस पूरी सृष्टि में जितना बाहरी विकास है उसमें तिरोधान है, याने हमको सब कुछ दिखाई देता है लेकिन शिव दिखाई नहीं देता। अर्थात् जो दिखता है वह है नहीं और जो है वह दिखाई नहीं देता। और जब अनुग्रह होता है तो हमको मात्र शिव दिखाई देता है, हमारी नजर तब दिव्य हो जाती है। हमारे गुरु की हम पर विशिष्ट कृपा हो तो शक्तिपात हो सकता है या फिर वह गुरु हमको योग्य समझे तो वह ये विज्ञान समझा सकता है, जिस विज्ञान की समझ से हमारी ग्रंथियाँ खुल सकती हैं, जिन ग्रंथियो की वजह से हम हजारों बरसों से कैद में पड़े हुए हैं। और भी कारण हो सकते हैं, हम सत्संग करें, स्वाध्याय करें, स्वाध्याय वास्तव में परमेश्वर की कृपा को आमंत्रित करता है। स्वाध्याय का मतलब होता है मुक्ति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करना, परमेश्वर से इस जीवन चक्र से बाहर निकलने के लिए प्रार्थना करना। सामान्यतः

हम ज्ञान कैसा बढ़ाते हैं? दुकान कैसे बढ़िया चला लें, धन कैसे बढ़ा लें, कैसे राजनीति में आगे बढ़ें? व्यक्ति सांसारिक मैंनजेमेंट का पाठ पढ़ता है ताकि वह संसार में स्वयं की संसारिक उन्नति कर सके, वेद में भी आरंभिक रूप से अपने संसार को अपने अनुकूल बना लेने के लिए कर्म बताये गए हैं, प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने के लिए वैदिक क्रियाएँ हैं, वैदिक हवन हैं, समस्त संसार को अनुकूल बनाने के साधन हमको दिए गये हैं। लेकिन फिर वेद के बाद आता है वेदांत। जब हमको ऐसा लगता है कि ये सब कुछ हमने कर भी लिया, तो भी मन में एक कसक कहीं न कहीं रह ही जाती है, क्या यही सब कुछ है? क्योंकि ये सब तो छूट जायेगा, मैं जाऊँगा तो मेरे साथ कुछ जाने वाला नहीं, इतना सुख और उसके बाद में सुख को छोड़ने का कष्ट! क्योंकि हमको इतना सुख मिला है कि सब कुछ मेरे अनुकूल चल रहा है, अब मैं इस सुख से दूर कैसे जाऊँ, दूर जाना कष्टप्रद है। आदमी बहुत अच्छी सांसारिक स्थिति में होता है तो उस स्थिति से दूर जाने से उसको बहुत तकलीफ होती है। वही तकलीफ वैराग्य पैदा करती है, उस सुख से दूर जाने की कल्पना, इस संसार से हमेशा के लिए विदा होने की कल्पना ही आपके हृदय में वैराग्य पैदा करती है। इन सांसारिक सफलताओं के बाद फिर क्या? एक प्रश्न खड़ा हो जाता है। क्या यही सब कुछ है? क्या यही मेरे जीवन का अंतिम लक्ष्य है? यह अंतिम लक्ष्य मिल गया तो क्या उसके बाद मेरे लिए कुछ भी बाकी नहीं है? उस एक चिन्तनशील व्यक्ति का मन फिर भी बैचेन रहेगा। उसकी बुद्धि कुछ न कुछ लगातार सोचेगी कि कहीं न कहीं अभी भी कुछ बाकी है। ये सब कुछ मिल जाने के बाद भी अंतिम रूप से हृदय को शांति नहीं मिलती। तब वह वेदांत की राह पर जाता है, तब वह संसार के रहस्य को, सत्य को समझना चाहता है, जीवन को समझना चाहता है, मृत्यु क्या है जानना चाहता है। और यही गुरु मिलन की पूर्व पीठिका है। गुरु दीक्षा का अवसर आता है। गुरुदेव! मुझे आप रास्ता दिखाइये कि मैं इस जीवन को व्यर्थ न गवां दूँ, क्योंकि आज तक उसने सबके लिए प्रार्थना की, प्रकृति को

स्वयं के अनुकूल किया, घर परिवार, धन, खेती बाड़ी, सबको अनुकुल कर लिया लेकिन उसके हृदय में एक अशांति थी वह अशांति उसे उस गुरु के द्वार तक ले जाती है। तो समिधा उठा कर वह गुरु से कहता है कि गुरुदेव ये जीवन व्यर्थ न चला जाये जब वह यह प्रार्थना करता है तो गुरुदेव उसे दीक्षा देते है। जब तक आपके हृदय के अन्दर तीव्र जिज्ञासा नहीं है तब तक आपको गुरुदेव नहीं मिल पाएंगे। हमारी प्रबल जिज्ञासा हमको परमेश्वर से मिलाने का रास्ता खोल देती है। तब गुरुदेव कहते हैं "हे बालक तुम्हारी इसी जिज्ञासा ने तुम्हारे कुल को तार दिया" तुम्हारे पूर्वज जो रास्ता देख रहे होंगे कि मेरे वंश में कोई आये और हम सबको तार दे, हमें बन्धनों से मुक्त कर दे। जैसे ही इस दिशा में आप पहला कदम रख देते हो तो आपके पितर प्रसन्न हो जाते हैं। "मेरे कुल में किसी ने आत्मबोध के लिए प्रयास शुरू कर दिया"। याने उसने अपने संसार के समस्त कार्यों को करने के साथ उससे आगे बढ़ने का सोचा तो सही। हम अधिकतर जीवन को व्यवस्थित करने में ही उलझ कर रह जाते हैं, उसी उलझन में हमारा जीवन नष्ट हो जाता है। कुल में अगर कोई एक व्यक्ति जीवन मुक्ति की ओर बढ़ जाता है तो उसके समस्त पितर मुक्त हो जाते हैं, उनके ऋण से वह मुक्त हो जाता है याने हमारे कंधे जिम्मेदारी है न केवल हमारी अपनी वरन हमारे कुल के पितरों की जिम्मेदारी हम पर है।

हमने समझा कि परमेश्वर अपने स्वभाव के भीतर, अपनी चेतना के भीतर समस्त क्रियाएं एक साथ करता है। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह। अनुग्रह का मतलब होता है जैसे जिसको वह बोध पैदा कर दे, जिसके हृदय में यह बात उतर जाये क्योंकि सामान्य बुद्धि से ये बात कभी समझ में नहीं आयेगी। अद्वैत मात्र बुद्धिगम्य नहीं है ये बुद्धि से परे की बात है। एक साधु थे निश्छलदासजी वह राज्य आश्रय में एक कुटिया बना कर रहते थे। उनके राजा ने एक दिन आकर बोला कि बाबा आप मुझे ज्ञान दीजिये, तब साधु निश्छलदासजी ने बोला "आप कुछ समय बाद आइये" क्योंकि ज्ञान देना सुपात्र को आसान है

लेकिन जो औसत दर्जे का पात्र है, उसके लिए कठिन। तुमको ज्ञान कैसे दें? तो साधु निश्छलदासजी ने उस राजा के लिए एक ग्रन्थ लिखा "विचार सागर"। यह ग्रन्थ हमारे हरिहर त्रिक आश्रम के ग्रंथालय में भी उपलब्ध हैं। उनमें से एक छंद का नमूना देखिये "मति न लखै, जिहि मति लखै, सो मैं सुद्ध अपार"। मति मतलब बुद्धि, लखना याने देखना, मति न लखै बुद्धि उसको देख नहीं सकती, क्यों नहीं देख सकती? क्योंकि 'जिहि मति लखै' जिसके द्वारा बुद्धि देखती है उसको बुद्धि कैसे देख सकती है, ये बुद्धि है और पीछे से उस बुद्धि को उर्जा मिलती है, जिसके द्वारा वह देखने की, विश्लेषण करने की क्षमता पाती है। याने उसकी विश्लेषण करने की शक्ति जिससे मिलती है उसी का विश्लेषण वह कैसे कर सकती है? "सो मैं सुद्ध अपार" वही अनंत शुद्ध चैतन्य मेरा परिचय है। हम जान गये कि अद्वैत बुद्धिगम्य बात नहीं है, यह बुद्धि से परे की बात है। इसके लिए अहसास का बहुत महत्व है, एक समर्पण का महत्व है, सांसारिक विचारों से जिस हद तक हमको मुक्ति मिल सके उसका महत्व है। अपने स्वयं के लिए समय निकालें, हम स्वयं के साथ हों, कुछ समय ऐसा बिताएं जब हम स्वयं के साथ हों, हम सबके साथ होते हैं, परिवार से साथ हो जाते हैं, मित्रों के साथ हो जाते हैं, किताबों के साथ हो जाते हैं, लेकिन हम अपने स्वयं के साथ नहीं हो पाते। स्वयं के साथ का मतलब होता है एकांत, एकांत और अकेलेपन में अंतर है, अकेलेपन में हम किसी साथी के होने इच्छा करते हैं। "अरे यार कोई मित्र नहीं आया बोर हो गये"। अकेलापन उदासी पैदा करता है और एकांत ज्ञान पैदा करता है। दोनों में फर्क है एकांत आपकी पसंद है, आपका सौभाग्य है, अकेलापन आपका दुर्भाग्य है। आप चाहते हो मेरे साथ कोई हो, कोई मुझसे बातें करे। कई लोग ऐसे हैं जो अकेले रह ही नहीं सकते, उनको सत्यनारायण की कथा में भी जाना हो तो एक दोस्त चाहिये, साथ नहीं हो तो जा ही नहीं सकते। कहीं यात्रा में भी जाना हो तो अगर हम दो व्यक्ति होंगे तो चले चलेंगे नहीं तो नहीं जा सकते क्योंकि उसको अकेलापन सताता है। एकांतप्रिय इसके विरुद्ध है,

वह सोचता है कोई है साथ तो अच्छा है और न हो तो और भी अच्छा है। वह अन्दर से अकेला है वह भीड़ में भी अकेला है, उसके चारों तरफ भीड़ भी हो तब भी वह अंतर्मुखी बना रहता है, सांसारिक बातों के बजाय वह अन्दर की तरफ ज्यादा चिन्तनरत रहता है। ये बात जब हमारे व्यवहार में आने लगती है तब अन्तर्ज्ञान जागृत होने लगता है, हम जितने अंतर्मुखी होते हैं, अन्तर्ज्ञान उतनी ही प्रबलता से जागृत होता है, अन्तर्ज्ञान हम सबको होता है, छोटा मोटा तो हमेशा ही होता है, कभी कभी हम सोचते हैं ऐसा होना चाहिये और वह हो जाता है और लगता है हाँ मुझे लग ही रहा था कि ऐसा होगा। इसके पीछे आप कोई तार्किक कारण नहीं बता सकते कि हाँ ऐसा था इसलिए ऐसा लग रहा था। कभी कभी हम कुछ बातों के बारे में पूर्वानुमान कर लेते हैं, इनका कोई तार्किक कारण नहीं होता यह भी अन्तर्ज्ञान है, लेकिन शुद्ध अन्तर्ज्ञान वह है जब हमको इस ब्रह्माण्ड का रहस्य समझ में आ जाये। तो आज हम जो बातें करने जा रहे हैं इसमें क्या है? समय की बात है इसमें, समय क्या है और समय की अवधारणा कैसी है? क्या यह बुद्धिगम्य है? क्या समय सबके लिए एक जैसा बहता है? क्या समय की कोई निरपेक्ष सत्ता है? इन्ही प्रश्नों के लिए ये श्लोक लिखे गये हैं। **अगर ये बात समझ में नहीं आती कि समय की लम्बाई जैसी कोई चीज नहीं है तो यह बुद्धिभ्रम भी शिव का स्वातंत्र्य है, इस भ्रम से ही संसार टिका है।** संसार से भय अज्ञान के कारण होता है, समय एक सापेक्षिक अवधारणा है और समय का एहसास हम सबको भिन्न भिन्न होता है। किसी को समय बहुत तेजी से बीतता हुआ मालूम पड़ता है, किसी को धीमे धीमे और किसी के लिए थम जाता है, ऐसा लगता है समय बीत ही नहीं रहा। लेकिन यह भिन्नता का अहसास एक ही जीवन में एक ही व्यक्ति को भिन्न भिन्न समयों में अलग अलग तथा एक ही समय में भिन्न भिन्न व्यक्तियों को अलग अलग महसूस होता है। और अलग अलग जीवों के समय के अनुभव पूरी तरह अलग अलग होते हैं। अभी आपको कहें कि ऐसा काम है तो बोलेंगे कि अभी चार दिन व्यस्त

हैं फिर ये काम बाद में कर लेंगे, चार दिन बाद मिलते हैं, लेकिन हमको ये नहीं मालूम कि इन चार दिनों में मच्छर के कितने पुनर्जन्म हो जायेंगे, उसकी तो पूरी जिन्दगी खत्म हो जायगी, सुबह जवानी होती है दोपहर में बुढ़ापा आ जाता है और शाम को हो सकता है उसकी मृत्यु हो जाये। एक ही दिन में सब कुछ देख लेता है तो हमारे दो तीन दिन और मच्छर का एक जीवन, ऐसे ही कई उदहारण हैं, आज कुत्ते की ५-७ साल की जिन्दगी में वह सब कुछ कर लेता है, गाय बैल १०-१२ साल की जिन्दगी में सब कर लेते हैं लेकिन हमारे जीवन के अन्दर हमको ७०-८० वर्ष उसी काम करने में लगते हैं, हाथी को १५० साल और कई पेड़ों को हजार हजार साल तक का जीवन मिलता है। अगर समय की अनुभूति जीवन से जुड़ी है तो मनुष्य को जो एक जीवन का अनुभव लेने में ७० से ८० वर्ष लगते हैं वहीं एक मच्छर जीवन का अनुभव ४ – ५ दिनों मे ले लेता है। तो क्या जीवन का एहसास, समय का एहसास सबके लिए एक जैसा है? अगर सबके लिए एक जैसा होता तो सबको एक दिन एक दिन सा बराबर लगता और हर दिन सुख का हो चाहे दुःख का हो एक जैसा बीतता। समय की कोई निरपेक्ष सत्ता नहीं है, अब ये बात तो हमारे ऋषि कह गये समय के बारे में। समय के बारे में वैज्ञानिक अन्वेषण शुरू हुआ १९ वीं शताब्दी के अंत में। उसके पहले समय की गति तथा सत्ता को निरपेक्ष कह कर विज्ञान चुप हो जाता था। वास्तव में समय क्या है? उसको जब अनुसन्धान करते चले गये तो १९ वीं शताब्दी के अंत से लेकर २० वी शताब्दी के शुरू में करीब १९१४-१५ के आसपास प्रयोगात्मक परिणाम आने लगे। आइन्स्टीन ने समय के बारे में जो गणितीय सूत्र दिया तब बहुत अच्छी तरह से समझ में आने लगा कि एक जैसी घड़ियाँ भी भिन्न भिन्न गतियों से चल सकती हैं, लेकिन चूँकि हम संसार में एक साथ रहते हैं, एक साथ हमारे संसार की गति है, इसलिए पृथ्वी पर स्थित जो घड़ियाँ हैं वे हमको एक साथ चलती हुई प्रतीत होती हैं। अगर हम पूरे ब्रहमांड की बात करें तो सारे ब्रह्माण्ड की घड़ियाँ एक जैसी नहीं चलेंगी। एक घड़ी को आप अन्तरिक्ष

में रख दो, एक को यहाँ रखो और अलग जगह रखो तो घड़ियों की चाल अलग अलग होगी। एक व्यक्ति अगर प्रकाश की गति के करीब करीब की गति से घूम फिर कर ब्रहमांड में चक्कर लगा कर ५ वर्ष बाद धरती पर लौट आये, जाने के पूर्व धरती पर वह परमाणवीय घड़ी लगा कर गया था जो सदियों में एक सेकंड भी आगे पीछे नहीं होती और ऐसी ही एक घड़ी साथ ले कर गया था। तो उसको तो बराबर मालूम है कि आज एक दिन हुआ, आज दो दिन हुआ, आज ३६५ दिन हुए, उसको मालूम था कि धरती पर आज चतुर्दशी है, आज अमावस्या है, आज दीपावली है। वह गया २०२५ में और २०३० में यहाँ पर आया। जब यहाँ का कैलेण्डर देखा तो ये क्या बात है! भाई यहाँ तो करीब १००० साल बीत गये! धरती पर १००० साल बीत गये और यहाँ पर जो कुछ है वह तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा ५ साल में कितना बदलाव आयेगा? ५ साल में दुनिया इतनी तो नहीं बदलना चाहिये जितनी वह बदलते देख रहा है! सचमुच में उसकी उम्र भी ५ साल ही बड़ी, उसकी घड़ी भी ५ साल आगे बड़ी लेकिन जब वह फिर से धरती पर आया तो मालूम पड़ा यहाँ १००० वर्ष बीत गये! तो ये तो बहुत कुछ बदल गया, तुम जिन लोगों की बात करते हो कि भाई वे लोग कहाँ हैं? ये तो हमने नाम भी नहीं सुने उनके! वह पूछेगा यहाँ पर मारुती की कारें चलती थीं, हुंडई की कारें चलती थीं, कुछ दिखाई नहीं दे रही? तो लोग बोलेंगे ऐसे कोई नाम हमने नहीं सुने, पिछले १००-२०० साल में तो ऐसा कोई नाम हमने नहीं सुना। समय की अवधारणा हमारी बुद्धि में इसलिए कमजोर पड़ती है कि हम *समय को समय के अधीन बुद्धि से महसूस करते* हैं। **जिस बुद्धि से हम समय का आकलन करते हैं वह बुद्धि स्वयं समय के अधीन है इसलिए वह समय के बहाव के बाहर जाने को ही मंजूर नहीं करती**। अगर एक नाव चल रही है हम नाव में बैठकर जा रहे हैं और हमारी नजर मात्र पानी पर है तो हम कुछ भी अंदाज नहीं लगा सकते कि हम किस गति से जा रहे हैं? एक नाव हमारे बाजु से तेजी से निकल गयी, तो हमको क्या लगेगा? अरे हम तो उलटे

पीछे जा रहे हैं! पानी शायद उधर जा रहा था, हम तो शायद पीछे जा रहे है क्योंकि हमारे बाजू से कोई नाव आगे निकल गयी तो हमको लगेगा कि हम तो पीछे जा रहे हैं। यही एक सामान्य सापेक्षिकता है, इस सामान्य सापेक्षिकता में कितने ही रहस्य छिपे हुए हैं। जब तक कोई सन्दर्भ बिंदु न हो तब तक हम दूरी का अंदाज नहीं लगा सकते, अन्तरिक्ष में एक यान जा रहा है और इसके बाजु से एक यान निकल गया तो हमको ऐसा लगेगा पता नहीं हम इससे धीरे चल रहे है या ये हमसे तेज चल रहा है या हम पीछे जा रहे है या ये आगे जा रहा है, हम दोनों की आपस में एक दूसरे के सापेक्ष गति तो समझ आती है लेकिन वास्तव में हम किधर जा रहे हैं? यह प्रश्न ही बेमतलब है। कह सकते हैं कि पृथ्वी की तुलना में हम किधर जा रहे हैं या चंद्रमा की तुलना में हम किधर जा रहे हैं। जब तक कोई सन्दर्भ न हो तब तक हम अपनी गति के बारे में कुछ भी नहीं बोल सकते। ऐसे ही समय है जिसकी गति निरपेक्ष नहीं है समय की गति सापेक्ष है और यही बात ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले कही थी। एक हजार वर्ष पहले तो आचार्य अभिनवगुप्तजी ने कही थी उन्होंने दसवीं सदी के अंत में और ग्यारहवीं सदी के आरंभ में अपनी रचनाएँ लिखी थीं। आज इक्कीसवीं सदी का आरंभ है और ये एक हजार वर्ष पहले की बात है। आज अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो हमारे लिए आश्चर्यजनक बात है। पिछले एक सौ वर्ष में विज्ञान गणितीय एवं प्रायोगिक विधि से सिद्ध पर पाया है कि समय की कोई निरपेक्ष सत्ता नहीं है, समय सबके लिए एक जैसा नहीं बहता, समय की एक सापेक्षिक सत्ता है, समय ठहर भी सकता है और तेजी से चल भी सकता है लेकिन समय के बहने की गति सबके लिए अलग है। ये बात हमारे ऋषियों ने अन्तर्ज्ञान से कही थी। अन्तर्ज्ञान समग्र ज्ञान का स्रोत है। संसार में जितने शास्त्र हैं, अंतरात्मा की आवाज हैं। जो अंतरात्मा से सुना वह हमने लिख दिया उसी का नाम है श्रुति, श्रुति इसलिए कि हमने जो सुना लिखा इसमें हमारा कुछ भी नहीं, हमारी कोई अहमियत नहीं, हमने कोई अपना योगदान नहीं किया, न उसमें कुछ घटाया है न

कुछ जोड़ा। इसलिए उस साहित्य का नाम है श्रुति, उसको वेदांत भी कहते हैं, उपनिषद भी कहते हैं। सांसारिक ज्ञान जो बाहर से आता है वह क्रमबद्ध ज्ञान है याने यह ज्ञान समय के अधीन है। जो अन्दर से आता है वह समय से मुक्त ज्ञान है। अन्दर से जो आता है शिव से आता है सीधे सीधे और शिव समय से मुक्त है, उसको कोई समय का बंधन नहीं है। ये बात अगर समझ में नहीं आती तो यह बुद्धि भ्रम भी शिव का स्वातंत्र्य है, शिव नहीं चाहता कि अभी आपको समझ में आये! क्योंकि उसको संसार चलाना है, इसलिए उसने माया रच रखी है और माया के परदे हमें सत्य ज्ञान से दूर रखते हैं, सत्य को आवृत्त कर देते हैं। अगर आप पर अभी अनुग्रह नहीं है तो आपको यह बात समझ में नहीं आएगी **शिव के अनुग्रह से गुरु की शिक्षा या शक्तिपात से अथवा शास्त्रों के मनन से हमें सत्य का बोध हो जाता है। सत्य ज्ञान पांडित्य ज्ञान नहीं है जो दिमाग में बैठ जाये, समझ में आ जाये लेकिन इसका जब बोध हो जाता है तो यही मुक्ति है।** समय समझते ही शिव समझ में आ जाता है, समय शिव से अभिन्न है, वह शिव की कला है और उसे शिव ने बना रखा है। एक गुत्थी सुलझते ही बहुत सारी गुत्थियाँ खुल जाती हैं, जिसको वह बताना चाहता है जिस पर वह अनुग्रह करना चाहता है उसी को वह सत्य प्रकट करता है। प्रबुद्धजनो को यह अनुग्रह प्राप्त होता है, जिसे जीवन मुक्ति कहते हैं। प्रबुद्धजन मतलब जिनके संशय विगलित होने लगे हैं। प्रबुद्ध के बाद एक होता है सुप्रबुद्ध जिसकी हम बात ही नहीं करते सुप्रबुद्ध मात्र शिव है, जो शिव स्वरूप हो चुका है, उसकी बात ही नहीं करते हैं क्योंकि शिव स्वरूपता जिसको मिल गई उसे न सत्संग में जाना है न ही कहीं मंदिर में जाना है न किसी संत के पास जाना है वह तो वापस संसार में जायेगा तो भी शिव है वह बंधनमुक्त हो गया। वह जहाँ जाये तो वह सुप्रबुद्ध है। उसी स्थिति तक तो जाना है हमको। प्रबुद्ध व्यक्ति को यह बात समझ में आती है। प्रबुद्धता कहाँ से मिलती है या तो शिव के अनुग्रह से मिलती है या गुरु के अनुग्रह से मिलती है या शास्त्रों के मनन चिंतन से मिलती

है। हमारे साथ विडम्बना यह है कि जब संसार में जाते हैं तो साथ अध्यात्म नहीं ले जाते। अगर आपको कॉलेज जाना है तो याद रखकर कॉपी पेंसिल या जो भी आपको ले जाना है याद रखकर ले जाते हो। परीक्षा देने जाते हो तो पेन पेंसिल स्केल आदि लेकर जाते हो, खेती पर जाते हो तो याद रखते हो कि बीज ले जाना है, बोने का सामान ले जाना है। याने हर जगह जब हम जाते हैं तो कुछ न कुछ साथ लेकर चलते हैं। संसार में हम अध्यात्म को साथ लेकर नहीं चलते। हम क्या सोचते हैं कि अध्यात्म पाटले पर बैठकर करने का काम है। यह हमारी सबसे बड़ी गलती है, बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि संसार में अध्यात्म पाट पर रखने की चीज नहीं है न वह मंदिर में वापरने की चीज है, न वह किसी तीर्थ में ले जाने की चीज है न ही अध्यात्म ऐसा है कि बुढ़ापे में करने का काम है। हमारी ये भ्रांत धारणाएँ है कि बुढ़ापे में करने का काम है जब सब दायित्वों से निवृत्त हो जाएं तो करें। या तो फिर हमारा एक कमरा है, ध्यान कक्ष, जिसमें हम अध्यात्म का चिंतन करते हैं, बाकी फिर संसार में कुछ लेना देना है नहीं, कई बार मैंने भी गुरुदेव को पूछा कि आप मुझे ध्यान की विधि सिखाओ ताकि मैं थोड़ी देर बैठकर ध्यान करूं तो वे पहले तो प्रश्न टाल देते थे, 'कहीं नहीं करना अपने को ध्यान' फिर जब उनसे मैंने एक दो बार और आग्रह किया कि लोग कहते हैं ऐसे करो ऐसे प्राणायाम करो ऐसे भृकुटी पर ध्यान करा करो तो बोलते हैं 'नहीं करना है'। तो फिर मैंने जानना चाहा कि मुझे आप हमेशा मना क्यों कर देते हो? तो बोले जागती आँखों से ध्यान करो तुम मरीजो को देखते हुए ध्यान करो, नहाते समय ध्यान करो, लोगों से बातचीत करते हुए ध्यान करो, नित्यकर्म करते हुए ध्यान करो, **संसार रूपी शिव को देखो यही ध्यान है**। पाटले पर बैठकर किया गया ध्यान, वहीं तक सीमित हो जायेगा। लेकिन ये बात हम सबको नहीं कह सकते, क्योंकि सबकी योग्यताएं अलग अलग होती हैं और ये तो परमेश्वर की इच्छा या गुरुदेव की कृपा जो मुझे उन्होंने इतनी बड़ी बात कही, लेकिन आरंभिक रूप से अगर हमारा मन बहुत चंचल है तो उस चंचलता को

कम करने के लिए पाट पर बैठकर भी, आसन पर बैठकर भी, ध्यान किया जाना चाहिए। थोड़ी देर मन को शांत चित्त रखने का और मन को स्थिर करने का प्रयास किया जा सकता है, लेकिन अंतिम रूप से ध्यान की परिभाषा ये है कि जब हम जाग रहे हों तो अध्यात्म हमारे साथ हो, जब हम खेल रहे हों तो अध्यात्म हमारे साथ हो, जब हम व्यवसाय कर रहे हों, खेती कर रहे हों, नौकरी कर रहे हों तब भी वह अध्यात्म हमारे साथ हो। याने क्षण भर भी हमारा साथ नहीं छूटे, जैसे कि हम चश्मा कभी नहीं छोड़ते इसको छोड़ देंगे तो शायद हमारा काम नहीं बनेगा, आज कल मोबाइल को भी नहीं छोड़ते। अच्छा इसके बगैर काम नहीं बनेगा, ऐसे ही हम अध्यात्म को भी साथ में ले कर चलें। हमारे बोलचाल व्यवहार तक के अन्दर वह बात शामिल रहे। हम किसी के साथ बोल रहे हैं, अगर आप कोई प्रतिस्पर्धी या कोई विरोधी है, हम उससे चिढ़कर बात कर रहे हैं, उससे लड़ाई कर रहे हैं तो उस समय भी हमारे हृदय में ये जागरूकता बनी रहे कि यह तो शिव है और मेरे ही कर्म इसको मेरे विरुद्ध खड़ा करके रखे हैं, मेरे कर्मों ने ही मेरे विरोधी का निर्माण किया है, मेरे प्रतिस्पर्धी का निर्माण किया है। अब मुझे लड़ाई करनी है वह करूँगा लेकिन जागरूकता हमेशा अन्दर से बनी रहे कि यह तो शिव है लड़ाई करने आ गया मुझसे, मुझसे हिसाब माँगने आ गया लेकिन है तो शिव। सांसारिक दृष्टि क्या है? ये बहुत ख़राब काम कर रहा है, मुझे काम करने से रोक रहा है, ये भुगतेगा, ये हमारी सामान्य सोच होती है। और आध्यात्मिक सोच क्या होती है? मैं भुगत रहा हूँ मेरे कर्मों को और शिव मुझे सजा देने के लिए आया है, यह सोच का फर्क है। अब उसके बाद व्यवहार तो हमको वही करना है जो संसारिक रूप से आवश्यक है। आपका कोई प्रतिस्पर्धी है तो उससे प्रतिस्पर्धा करना है, विरोधी है तो उसका सामना करना है, अगर कोई चोरी करने आया है तो उसे पुलिस के हवाले करना है। जो भी हमारे सांसारिक कर्तव्य हैं उन कर्तव्यों से भागने का अध्यात्म नहीं कहता, प्रत्येक समय अध्यात्म आपके साथ में हो, उसको घर नहीं छोड़ें। अगर वह हमारे साथ

है तो फिर उस समय भी अन्दर से आवाज आएगी कि ये भी शिव है, ये अलग बात है कि वह आज मेरे विरोधी का रूप धर कर आया है, लेकिन है तो शिव, तो अन्दर से आपकी जो स्थिरता है वह कभी कम नहीं होगी। अन्यथा क्या होगा? अन्दर से हम हिल जाते हैं, क्रोध से आग बबूला हो जाते हैं, धड़कन तेज हो जाती है, ब्लड प्रेशर बढ़ जाता है, घबराहट होने लगती है, बैचेन हो जाता है आदमी कि मुझे ऐसा कैसे बोल दिया इसने, ऐसा मुझे कैसे कह दिया लेकिन अगर हमारा अध्यात्म साथ है तो हमारा अन्तस शांत बना रहता है, चट्टान की तरह स्थिर रहता है, जिह्वा भले फिर आग उगले लेकिन हमारा अन्तस फिर भी ठंडा रहता है क्योंकि हम जानते हैं वह तो शिव ही है। कर्म तो मेरे ही थे जो ख़राब थे जिसकी वजह से शिव ने ऐसा रूप धरा और मुझे ऐसी बातें सुनना पड़ीं। यह जागरूकता न केवल आपकी आध्यात्मिक प्रगति को तेज कर देगी वरन यह भी सत्य है कि ऐसी जागरूकता आपके सांसारिक जीवन को भी स्वस्थ कर देगी। आपके जीवन में जितनी कठिनाइयाँ आती हैं, बीमारियाँ आती हैं वे अधिकतर मामलों में हमारे विचारों के परिणाम हैं। हम जितनी बीमारियाँ भुगतते हैं उनमे से कई बीमारियाँ हमारे अन्तस से सम्बन्ध रखती हैं, हमारा अन्तस अगर मंदिर की तरह पवित्र है, शांत है, सुगन्धित है तो हमारा जीवन निश्चित रूप से सार्थक हो जाता है, स्वास्थ भी ठीक होने लगता है, मन प्रसन्न रहता है, नींद ठीक आने लगती है और हमारा व्यवहार अच्छा होने लगता है, हमारा प्रदर्शन अच्छा होने लगता है। मान लो हम कोई व्यवसाय कर रहे हैं, व्यवसाय अच्छा चलने लगता है, अगर हम कोई काम करते हैं तो वह काम दक्षता से होने लगता है। ये सब चीजे हमें अतिरिक्त प्राप्त होती हैं। हमारा मूल उद्देश्य तो परमेश्वर के बोध को प्राप्त करना है, लेकिन संसार भी अपने आप सुधरता चला जाता है क्योंकि हमारे अन्दर की स्थिरता जो बनी रहती है, हमको अच्छा निर्णय लेने की क्षमता आ जाती है। क्रोध में, मोह में, ईर्ष्या में हम स्वस्थ निर्णय नहीं ले पाते, हम जो भी निर्णय लेते हैं वह निर्णय पूर्वाग्रह से प्रभावित

होता है, झुका हुआ होता है, वह हमारा सीधा सीधा निर्णय नहीं होता। ऐसे निर्णय हमको और संसार के गड्डे में धकेल देते हैं। हमारे साथ में अध्यात्म चलता रहे, ऐसा न हो कि हम उसको पाट पर छोड़ आएं। गुरुदेव कहते थे कि पाट पर मत छोड़े आना उसको, पाट पर छोड़ आये कल जाकर फिर पकड़ लेंगे, आधे घंटे बैठेंगे फिर साढ़े तेईस घंटे क्या रहोगे तुम, आधे घंटे का अध्यात्म काम का नहीं है, वह तो धीरे धीरे बढ़ने दो, लेकिन अध्यात्म तो तुम्हारे जीवन में उतरना चाहिये, तुम सोचो कि पूरा इतना बड़ा खेत है एक पेड़ को खूब अच्छा बढ़िया हरा भरा कर दूँ तो उससे क्या होगा। पूरे खेत को ही सींचना है किसी एक पेड़ को नहीं सींचना है। ऐसे अगर पूरे जीवन को सींचना है तो हमारे पूरे शरीर में पूरे मन में, बुद्धि में, अहंकार में, हर जगह वह अध्यात्म का छिड़काव होना चाहिये तब हमारा अपना जो व्यवहार है उसके हिसाब से रहेगा, उसके अनुकूल होता चला जायेगा, जब हम बोलेंगे, सोयेंगे, खायेंगे व्यवहार करेंगे, यहाँ तक कि हम लड़ाई झगड़ा भी करेंगे तो उस अध्यात्म की भाषा में ही करेंगे, उस अध्यात्म की सीमा में करेंगे याने हम उस परमेश्वर शिव की इच्छा से करेंगे, हमारा नैतिक साहस चरम पर होगा। तब हम क्या करते हैं? अपने व्यवहार की डोरी परमेश्वर शिव को दे देते हैं। अब हम वैसे नाचेंगे जैसे वह नचाएगा क्योंकि उसकी इच्छा के अनुकूल नाचेंगे। आपने कभी एक बहुत पुराना गाना सुना होगा "बोल री कठपुतली डोरी कौन संग बांधी सच बतला तु नाचे किसके लिए, बावरे कठपुतली डोरी पिया संग बाँधी मैं नाचूं अपने पिया के लिए" यह गाना फ़िल्मी गाना है, लेकिन उस गाने में अध्यात्म है। हम परमेश्वर के हाथ में अपनी डोरी दे देते हैं कब जब उस अध्यात्म को अपने साथ लेकर चलते हैं तब हम कह देते हैं कि हमारे साथ अच्छा घटे, बुरा घटे जो भी घटे मैं तेरे साथ हूँ फिर तू जिधर नचाएगा उधर नाचूँगा लेकिन ये पूर्ण समर्पण तभी आता है जब हृदय में ज्ञान की तीव्र पिपासा हो, ज्ञान की तीव्र इच्छा हो। इस तरह इस दृष्टिकोण से देखें फिर ये भक्ति और ज्ञान की जो भिन्नतायें समझते हैं ऐसी कोई भिन्नतायें नहीं हैं,

ज्ञान ले जाकर भक्ति के चरम पर खड़ा कर देती है और भक्ति ज्ञान के चरम पर ले जाकर खड़ा कर देती है। दोनों तरह से हम उसी शिखर पर पहुचते हैं, एक उत्तर से ले जायेगा एक दक्षिण से इससे क्या अंतर पड़ेगा? उत्तर दक्षिण से मतलब नहीं है मतलब तो उस शिखर से है जहाँ अंतिम रूप से हमको जाना है। बोधपञ्चदशिका के हम १३ सूत्र पढ़ चुके हैं दो सूत्र और एक उपसंहार अगले या १-२ सप्ताह तक पढ़ते हैं उसके बाद ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की शुरुआत करेंगे। गुरु नारायण ---

बोधपञ्चदशिका- पाठ ८

आज दिनांक १८ जनवरी २०१८ गुरुवार का दिवस है, और हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आप सभी का स्वागत है। बोधपञ्चदशिका का हमारा अध्ययन क्रम अपने अंतिम पड़ाव पर है। बोधपञ्चदशिका का अगर हम सिंहावलोकन करें - अभी तक हमने जो देखा कि परमेश्वर प्रकाश और विमर्श रूप है। परमेश्वर के अस्तित्व के दो स्वरूप हैं एक उसका अस्तित्व जिसको हम प्रकाश कहते हैं दूसरा उसका विमर्श। कोई भी जीव तब तक जीवित नहीं कहलाता जब तक कि वह विमर्श नहीं कर सकता, जब तक कि वह अपने आप को नहीं जानता कि मैं कौन हूँ, यह अलग बात है कि माया क्षेत्र में हमारी यह जानकारी अक्सर गलत होती है। लेकिन फिर भी हम, चाहे गलत, लेकिन अपने आपको जानते हैं। अगर हम सतत सोचें कि मैं शिव हूँ, तो ये सोचने में कुछ गलत नहीं है। जब तक हमारी अपने शरीर से अहंता है हम ये सोचते हैं कि मैं फलाना हूँ, मेरी उम्र इतनी है, मैं फलानी जगह रहता हूँ, दुखी हूँ, सुखी हूँ या संसार की अन्य भिन्न भिन्न व्यवस्थाओं को अपने आप से जोड़ लेता हूँ कि मैं

इस दल में हूँ, या इस ग्राम का हूँ, या इसका विरोधी हूँ या इस विचारधारा का हूँ इस तरह से हमारी एक सीमित पहचान होती है। वह सीमित पहचान भी, चूँकि हम अपने आप नहीं कर सकते, शिव का गुण है, शिव का विमर्श है। जो अपने आपको नहीं जानता वह जड़ है। याने चेतना की सर्वोत्तम परिभाषा यह है कि एक तो वह ज्ञान प्राप्त कर सकती है और दूसरा वह अपने आपको जानती है। शिव अपनी ज्ञान शक्ति से अपने भीतर स्वतंत्रता से कुछ रचते हैं फिर क्रिया शक्ति से उसे अभिव्यक्त करते हैं और अंततः ज्ञान शक्ति से उस रचना से जुड़े रहते हैं। ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति स्वातंत्र्य शक्ति के ही पहलु हैं जिन्हें मात्र समझने के लिए अलग अलग नाम दिए हैं अन्यथा ये शक्तियाँ शिव से अभिन्न हैं। ये ठीक वैसा है जैसे मैंने एक खिलौना स्वयं बनाया और फिर मैं उस खिलौने से स्वयं खेला। परमेश्वर शिव ने यह क्यों सृष्टि बनाई? इसका महान ऋषियों ने, चिंतकों ने जब विश्लेषण किया तो सभी एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह शिव का एक खेल है। खेल खेल में उन्होंने सृष्टि बनाई और उस सृष्टि से कौन खेले? वह स्वयं ही खेले, अब चूँकि इस खेल में कुछ नियम तो होते हैं, हर खेल में कुछ नियम होते हैं, हम हमारे परम मित्र के साथ अगर ताश भी खेलते हैं तो पत्ते छिपाते हैं अन्यथा खेल में कोई रस नहीं होगा, इसी तरह से परमेश्वर शिव ने अपना स्वरूप छिपा लिया कि मैं कौन हूँ, अन्यथा इस खेल में कुछ भी आनंद नहीं था, कोई मजा था ही नहीं, क्योंकि जब हर कोई जानता है कि मैं शिव हूँ तो उसके लिए कोई कर्तव्य शेष रह ही नहीं जाता, इस संसार की भाग दौड़ में उसका कोई योगदान होता ही नहीं। लेकिन हम नहीं जानते हैं कि हम शिव है इसलिये संसार के अन्दर कुछ पाने के लिए, कुछ उपलब्धियाँ पाने के लिए भाग दौड़ करते हैं और जब इससे मन अघा जाता है तो फिर शिवत्वता पाने के लिए भी भाग दौड़ करते है। जब किसी संत को या ऋषि या योगी को शिवत्वता का बोध हो जाता है कि मैं शिव हूँ तो वह पाता है कि मैं तो शिव ही था और मैं अनजाने में पता नहीं इस खेल में कहाँ कहाँ भटकता रहा न तो कुछ पाया न

कुछ खोया और जहाँ था वही खड़ा हूँ, ये तो ऐसी बात हो गई जैसे मेरे घर में ही सब कुछ था और मैं सारी दुनिया में ढूंढ आया। लेकिन मिला क्या? घर में एक चाबी, और उससे ताला खोला तो मुझे वह खजाना मिल गया जिसको पूरे संसार में ढूंढ रहा था। वास्तव में हम मंदिर में, तीर्थों में, नदियों में, मंत्रों में और पता नहीं कहाँ कहाँ परमेश्वर को ढूंढते हैं लेकिन परमेश्वर अगर मिलता है तो आपकी अंतर चेतना में। वह मिलेगा तब जब आप अंतर्मुखी हो जाओगे, आपके भीतर ही परमेश्वर है जो आपसे ये कार्य करवा रहा है। ये शरीर को जो चला रहा है वही परमेश्वर का सच्चा स्वरूप है। आपकी अंतिम पहचान, स्थायी पहचान, परमेश्वर के सिवाय कुछ नहीं है। आपका अंतिम परिचय परमेश्वर है, आपके अन्दर वही एक है जो आपके हाथ पैर चला रहा है, इस संसार से आपकी अंतर्क्रिया करवा रहा है, कभी कहीं संसार में दौड़ लगवा रहा है, तो कहीं आपसे सच बुलवा रहा है, कहीं झूठ बुलवा रहा है, कहीं षड्यंत्र करवा रहा है। जो "मैं" कह रहा है, वही तो वह है जिसे वह स्वयं खोज रहा है! और इस सब में वह आनंदित हो रहा है। यह उसकी स्वातंत्र्य शक्ति है। परमेश्वर शिव को इस खेल में आनंद आ रहा है, उस शक्ति के द्वारा इस संसार को रचा और वह स्वयं ही उस संसार में उस शक्ति से खेल रहा है। याने वह रचने वाला भी स्वयं ही है, खेलने वाला भी स्वयं ही है। परमेश्वर को हम अपने अन्तस् में ढूंढेंगे तो हमारे वास्तिवक अस्तित्व के रूप में वह प्रकट हो जाता है। और जब हम बाहर ढूंढते हैं तो सदियाँ बीत जाती हैं हमको परमेश्वर नहीं मिलता क्योंकि बाहर माया का साम्राज्य है इसलिए सत्य देखना कठिन है। जब हम वास्तविकता को सत्य की नजर से देख पायेंगे, तो सब कुछ परमेश्वर दिखाई देगा। उसे जानते ही मालूम पड़ेगा कि सब कुछ उसी का प्रकाश है, सब कुछ उसी के द्वारा है। किसी चीज का सत्यापन करने के पहले उस चीज का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता ! अगर आप कहें कि जंगल में हमने एक पुष्प देखा। तो एक देखने वाला होगा तभी उस पुष्प का अस्तित्व है, अन्यथा उस पुष्प का कोई अस्तित्व

नहीं! क्योंकि जब तक एक चैतन्य उसको सत्यापित नहीं करता तब तक उस पुष्प का कोई अस्तित्व नहीं है। इसका सीधा सा मतलब है कि चैतन्य ही रचयिता है। यह बात सामान्य बुद्धि से समझने में थोड़ी सी कठिनाई आती है लेकिन जब धीमे धीमे हम अंतर्चिंतन करते चले जाएं, मन को साफ रखें और बहुत ज्यादा भाग दौड़, महात्वाकांक्षाओं से बचे रहें तो हमको ये बात समझ में आ जाती है, इसके लिए जो मूलभुत गुण है, जो हमको अपने आप में विकसित करना चाहिये, वह हैं जीवन की सरलता, जीवन में क्लिष्टताओं को कम करते चले जाएं, सरलता को बढ़ाते चले जाएं। मन को दुर्भावनाओं, प्रतिस्पर्धाओं, ईर्ष्या, घृणा इन सब चीजों से मुक्त रखने की कोशिश करें और हमारी दृष्टि को बदलें जिससे हम संसार को देखते हैं। अगर हम संसार को परमेश्वर की नजर से देखें, कैसे देखता है परमेश्वर? चलो इन्सान की नजर से हम अपने आपके शरीर को देखें तो इस शरीर में हमको नाक भी दिखाई देती है, आँख भी दिखाई देती है, कान भी दिखाई देते हैं, हाथ पैर दिखाई देते हैं, पूरा शरीर दिखाई देता है, इनमे से प्रत्येक अंग का एक अलग उपयोग है, शरीर के विभिन्न अंगो के विभिन्न उपयोग हैं। जब हम अपने शरीर को देखते हैं तो भिन्न भिन्न अंगो के भिन्न भिन्न उपयोगों को हम जानते हैं लेकिन इसके बावजूद हम ये भी जानते हैं कि इनमें से हर अंग अपने आप में महत्वपूर्ण है। आँख के बगैर जीवन रसहीन हो जायेगा, पैर नहीं होंगे तो भी जीवन बेरंग हो जायेगा, लेकिन सभी अंग आपस में तालमेल से काम करते हैं तब ये शरीर चलता है। ऐसा ही ब्रह्माण्ड है, ऐसी ही सृष्टि है जहाँ संत भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि दुर्जन क्योंकि वह दुर्जन भी अपने आप में शिव है। जिनके प्रति दुर्जनता है वह उनके कर्मफलों का प्रतिबिम्ब है। हमारे घर कोई दुर्जन आता है तो वह हमको हमारा चेहरा दिखता है, दर्पण दिखता है, कि हमने क्या कर्म किये थे! हम यहाँ शिव को नहीं पहचान पाते और फिर घृणा से भर जाते हैं, क्रोध से भर जाते हैं। और ये सब संसारिक दृष्टि से करना भी चाहिये। क्रोध भी कीजिये, अपना कर्तव्य भी कीजिये। अगर

घर में कोई चोर घुस गया तो ऐसा नहीं कि शिव है, उसकी पूजा करने बैठ गये उसको कानून के हवाले भी करने का कर्त्तव्य भी है, अपने संसारिक कर्त्तव्य को कभी भी नहीं भूलना है। लेकिन हमारा वह क्रोध, हमारी वह घृणा मात्र उपरी हो, व्यवहारिक हो। वह घृणा हमारे भीतर से नहीं उपजे तो हम समझ सकते हैं कि हम सही दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। प्रतिदिन अवसर आयेंगे जब क्रोध करना पड़ेगा, जब कहीं न कहीं किसी कर्तव्य के नाते हमको अप्रिय कार्य करना पड़ेगा क्योंकि कोई भी कार्य करो सारे संसार के सब लोगों को प्रिय नहीं लगेगा। आप अगर न्यायाधीश बन गये और कोई फैसला लिखोगे तो कुछ को प्रिय लगेगा, कुछ को अप्रिय लगेगा लेकिन अगर आप बिलकुल निष्पक्ष हो, निर्लिप्त हो तो उससे आपको कोई लेना देना नहीं, आप बिना पूर्वाग्रह के कानून का स्पष्ट पालन कर रहे हों तो आप जो काम करोगे किसी को प्रिय लगे चाहे अप्रिय लगे उससे हमको कोई सरोकार नहीं है। उस न्यायाधीश को सरोकार है न्याय से। अगर आपको न्याय से सच्चा सरोकार है तो उसको और लोगो के सरोकार से कोई लेना देना नहीं। लेकिन अगर वह स्वयं लिप्त है, जानबूझकर गलत निर्णय देता है, जानबूझकर किसी विशेष निर्णय के प्रति उसका आकर्षण है, तो उस परिस्थिति में वह भी उसी संसार की दौड़ में शामिल है। इसलिए अगर हमारी दृष्टि सही है तो हम क्रोध करें, प्रेम करें, झगड़ा करें जो भी करें वह हम वैसा ही करेंगे जैसा परमेश्वर की इच्छा है, मतलब परमेश्वर की इच्छा के अनुकूल हमारा आचरण होगा। तब जब हमारी आँखें इस संसार को परमेश्वर की दृष्टि से देखेंगी, जैसे कि हम अपने शरीर को देखते है, वैसे ही परमेश्वर इस ब्रह्माण्ड को देखता है, क्योंकि ये ब्रह्माण्ड उसका अपना शरीर है। ये उसका अपना विकास है इसलिए संसार को परमेश्वर जिस दृष्टि से देखता है उस दृष्टि से मैं अपने शरीर को देखता हूँ लेकिन अब मैं अपने शरीर से हटकर बाकी संसार, जो मेरे साथ है जो मेरे साथी सहयोगी हैं, जो जीव जंतु हैं, जो जड़ चेतन हैं, इन सबके प्रति मेरा रिश्ता अगर प्रेम का होगा तो फिर उस परिस्थिति में मेरे भीतर भी शिवत्वता का

उदय होने लगता है। इस दृष्टि का विकास करना ही अध्यात्म का सबसे उच्चतम लक्ष्य है जहाँ पर हमारा भेद समाप्त हो जाये। व्यवहार तो हमारा अपने आप उस परिस्थिति के अनुकूल हो जायेगा जैसा शिव चाहता है। अप्रिय परिस्थिति में आपके हृदय से यह जागरण क्षणभर को विलुप्त न हो कि यह मेरे अपने कर्मो का प्रतिबिम्ब है, परमेश्वर मुझे दर्पण दिखा रहा है। हमने जो कर्म किये हैं उनका परिणाम सुख रूप हो चाहे दुःख रूप हमें भोगना ही है लेकिन हमारा अन्तस् स्थिर हो जायेगा, कड़वाहट से मुक्त रहेगा। हम स्थिर चित्त हो जायेंगे। स्थिरचित्तता हमारी सबसे बड़ी पहचान है कि हमारी दृष्टि कितनी स्पष्ट हुई है। जो अंतर्यात्रा आरम्भ करता है वह स्थिर चित्त होता जाता है। गुरुदेव कहते थे कि अगर तुमको यह पता लगाना हो कि क्या तुम सही दिशा में हो? तो पच्चीस पचास मौके प्रतिदिन मिलेंगे स्वयं को परखने के। आप कभी किसी बात से अन्दर से हिल जायेंगे, ये बहुत बुरा हो गया, मैं ऐसा नहीं चाहता था लेकिन वैसा हो गया। रोजाना ऐसे पचासों मौके आएंगे जब आपके मन के विरुद्ध आपको परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। ऐसे ही आपको मन के अनुकूल परिस्थितियाँ भी मिलेंगी, हमने मांगे थे १० हजार मिल गए १ लाख! परिस्थितियाँ कभी कभी हमारी बहुत अनुकूल होती हैं। तो दोनों स्थितियों में अगर आपका चित्त स्थिर बना रहता है तो हमारी दृष्टि सही है। क्या ऐसा है कि हम ख़ुशी से बहुत ज्यादा बावले हो जाते है? क्या दुःख से बहुत अधिक विह्वल हो जाते हैं? अगर इन दोनों स्थितियों में हमारी विह्वलता और बावलेपन में थोड़ी थोड़ी भी कमी आती है तो हम सही दिशा में जा रहे है, क्योंकि किसी न किसी दिन हम दोनों छोरों को एक साथ कर लेंगे। इधर हमारे दुःख हैं, उधर हमारे सुख हैं और दोनों छोरों को हम किसी न किसी दिन एक साथ कर लेंगे लेकिन यह तब संभव है जब हम दैनंदिन के अनुभवों में अपने आपका विश्लेषण करें। जैसे कोई घटना हुई, हम बहुत क्रोधित हो गये, बात निकल गयी। फिर शाम को हम चिंतन करें कि आज हमें क्रोध भीतर से आया था अथवा क्रोध का अभिनय

किया था? क्रोध जब भीतर से आता है तो हमारे अंतर्चिन्तन को हिला देता है, हमारे चित्त की स्थिरता नष्ट कर देता है, विवेक को हर लेता है। और क्रोध का जब अभिनय करते हैं तो साथ ही साथ हृदय में प्रेम और करुणा बनी रहती है, हमारा विवेक सजग रहता है। जिससे हम क्रोध करते हैं उसके प्रति भी हमारी सहृदयता कभी कम नहीं होती बावजूद इसके कि हम अपने कर्तव्यवश उसका विरोध करते हैं। एक क्षण भी हम अपने स्वरूप से दूर न हों हम अपने आपकी पहचान से दूर न हो। तो हमने ये पढ़ा था कि परमेश्वर प्रकाश और विमर्श रूप है, शिव और शक्ति अभिन्न है, परमेश्वर शिव पंचकृत्य सदा करता है, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह के पांचो कार्य एक साथ अक्रम रूप से करता है। वह अपने स्वरूप के भीतर पांचो कार्य एक साथ करता है, उसके लिए न कोई भविष्य है, न कोई भूत है, न कोई वर्तमान। वह तीनों कालों में एक साथ समाया हुआ है क्योंकि वही भविष्य है, वही वर्तमान है और वही अतीत है, तीनों काल वह स्वयं है, जब वह तीनों काल है तो उसके लिए काल का बंधन नहीं है इसीलिए हमारे शास्त्रों में उसको महाकाल या अकाल कहते हैं। उसको विक्रम कहते हैं, जो क्रम से बंधा हुआ नहीं है। परमेश्वर का स्वरूप हम अन्दर खोजेंगे तो हमको मिल जायेगा, बाहर खोजेंगे तो तभी मिलेगा जब हमारा अन्तस् पवित्र हो जायेगा। जब भी हमारे शुद्ध अंतस का प्रक्षेपण हमें संसार में दिखाई देता है वही साक्षात् दर्शन है। हमको भगवान् के साक्षात् दर्शन हुए तो साक्षात् दर्शन तभी हो पाते हैं जब हमारा आत्मा का प्रतिबिम्ब हमको हमारे सामने दिखाई देता है। हमारी **आत्मा परम नटी है, परम रचनाकार है और वह भगवान् के रूप को भी रच लेती है। भगवान् का कोई रूप बना बनाया नहीं है, वह तो निर्गुण हैं, बिना किसी रूप रंग के हैं, लेकिन हमारी अपनी प्रबलतम इच्छा के कारण वह उसी रूप में दिखाई दे सकते हैं जिस रूप का हम सतत चिंतन करते हैं, लेकिन वह रूप बनाया हुआ हमारा है, उसका अपना कोई रूप नहीं है या कह सकते हैं कि समस्त रूप उसी के हैं**। अगर

हमको ऐसा लगता है कि हमको मुरली मनोहर श्याम के दर्शन करना है तो वह हमारे हृदय से ही वह प्रेक्षित होता है, वह हमारे चित्त से ही प्रतिबिंबित होता है, वह कहीं बाहर से उतर कर नहीं आता। **जब हमारी तीव्रतम इच्छा हो और आत्मा शुद्धतम हो, संसार के मोह से मुक्त हो तो वह रचयिता बन जाती है, याने वह स्वयं शिव बन जाती है**, फिर जो चाहे रूप भी बना सकती है, इस तरह से हमने ये अब तक के जो सूत्र पढ़े थे उसके सार रूप में हम इस बात को समझ गये कि शिव एक है ये शिव और शक्ति का सम्मिलित स्वरूप है, वह स्रोत जहाँ से यह ब्रह्मांड उत्पन्न हुआ वह शिव है। जो ब्रह्मांड हमको दिखाई देता है वह शक्ति है। महेश्वर शिव जब अपने आपको अंतर्मुखी होकर देखते हैं उसका नाम विमर्श है, उसी का नाम शक्ति है, और परमेश्वर शिव जब विमर्श करता है तो अन्दर पाता है कि मैं शक्तिशाली हूँ और मेरी शक्ति का कोई विरोध नहीं है। तब वह शक्ति का परिक्षण करता है, क्योंकि बिना परीक्षण के किसी शक्ति के अस्तित्व का कोई मायना नहीं। शक्ति के परीक्षण के लिए उन्होंने अपने अन्तस् से इस ब्रहमांड को अभिव्यक्त किया, यह हमारी भाषा में 'बाहर' बोलते हैं, उसने बाहर नहीं निकाला उसने तो इस ब्रहमांड को बनाया, एक खेल है उसके लिए, और वह कहाँ बनाया उसने? क्योंकि उसके पास बनाने के लिए कोई जगह नहीं थी, उसके पास और कोई विकल्प नहीं था सिवाय इसके कि वह अपनी ही चेतना में उसकी रचना करे। और जब वह अपनी ही चेतना में उसकी रचना करता है तो वैसे ही करता है जैसे एक दर्पण में पूरा गाँव दिखाई देता है। वह गाँव दर्पण से अभिन्न है, वह दर्पण से बिलकुल भी अलग नहीं है, वह दर्पण ही है जो हमको दिखाई दे रहा है। अंतर केवल इतना है कि वहाँ कोई गाँव है ही नहीं! बस दर्पण में गाँव दिखाई दे रहा है। चलचित्र के परदे पर सारा संसार दिखाई दे सकता है जो चलचित्र से अभिन्न है। ऐसे ही शिव चेतना में हमको पूरा ब्रह्माण्ड दिखाई देता है। लेकिन असल में ब्रहमांड शिव चेतना से बाहर नहीं है। शिवचेतना के बाहर कुछ भी नहीं है जो जाना जा सके। जो हम

कहते हैं बाद में, पहले, बाहर, इसके पहले, उसके बाद, इसके भीतर ये हमारी वह भाषा है जो हमारे समय-अन्तरिक्ष के बंधन को प्रदर्शित करती है। उसके बाद अर्थात् समय के क्रम में ये पहले ये बाद हो सकता है लेकिन जहाँ समग्र समय उसके भीतर है तो पहले और बाद का कैसे भेद कर सकते हैं? अगर एक चक्र में कुछ लोग कतारबद्ध गोल गोल घूम रहे हैं तो आगे कौन है और पीछे कौन है? लेकिन हमारे मन में हमारे मस्तिष्क में हमारी बुद्धि में मात्र 'पहले', 'बाद' की ही बात समझ में आती है क्योंकि हमारी बुद्धि समय के अधीन है, समय की अवधारणा के अधीन है, समय की अवधारणा के बाहर आकर सोच ही नहीं सकती, क्योंकि सोचना अपने आप में भी समय के अधीन है! जब हम कुछ सोचते हैं, तो शब्दों से सोचते हैं, किसी भाषा से सोचते हैं बिना भाषा से कौन सोचता है? एक नवजात शिशु! वह बिना भाषा के सोचता है उसको भूख लगती है तो वह रोता है, जब प्रसन्न होता है तो हँसता है। उसकी मुस्कराहट, उसका रोना बिना किसी भाषा के होता है। हम कह सकते हैं कि वह शिवत्वता के अधिक नजदीक है लेकिन जैसे जैसे उम्र बढती है, हममें दोष याने भिन्नता की दृष्टि विकसित हो जाती हैं। हमारी सोच विचार की क्रिया पर शब्दों का अधिकार हो जाता है। उसके बाद में हम उस संसार से रंग दिए जाते हैं उस संसार की दौड़ में दक्ष हो जाते हैं, हममें वह दृष्टि विकसित होती है जो समय और अन्तरिक्ष के अधीन है। दृष्टि की दो सीमाएँ हैं काल और नियति। इनसे मुक्त होकर अगर कोई दृष्टि हो सकती है तो वही हमको बता सकती है कि समय क्या है। सचमुच में अगर आपको ये कहें कि समय की कोई लम्बाई होती ही नहीं है! हम कहेंगे बात समझ में आई ही नहीं, तो वास्तव में समझने की बात है भी नहीं, और समझ में आजाये तो तुम झूठ बोल रहे हो, समझ में आ भी नहीं सकती, कोई बोलता है मुझे समझ में आ गया कि समय की लम्बाई नहीं है तो उसने ये बात रट ली कि समय कि लम्बाई नहीं होती लेकिन समझ में नहीं आई समझ में तो तब आती है जब हम अपने भीतर के भीतर उतर कर अपनी चेतना से एक हो

जाते हैं वहाँ से जब संसार को देखने की क्षमता हममें पैदा हो जाती है तो एकाएक विस्फोट की तरह यह बात समझ में आती है कि समय कुछ भी नहीं है, समय की कोई निरपेक्ष सत्ता नहीं है। विज्ञान की दृष्टि से देखें तो इस बात का बोध सबसे पहले आइन्स्टीन को हुआ कि समय की निरपेक्ष सत्ता नहीं है, आइंस्टीन के लिए यह बोध गणित के गर्भ से निकला। उन गणितीय अवधारणाओं की समझ बहुत मुश्किल है लेकिन बिना क्लिष्ट गणित के भी इस आधारभूत सत्य को अंतर्दृष्टि से समझा जा सकता है। शिव किसी भी नियम के अधीन नहीं, संसार के समस्त नियम शिव ने बनाये हैं लेकिन वह समस्त नियमों से परे है। भौतिक रूप से हर घटना पूर्वानुमान के दायरे में आती है, अगर हमारे पास पर्याप्त आकड़े हैं तो हम परिणाम पहले से बता सकते हैं, लेकिन पार्याप्त आकड़े होने से बाद भी परिणाम अनिश्चित हो और वह किस पर निर्भर करे? प्रयोग करने वाले पर निर्भर करे! यह बात भौचक्का करने वाली है। यह क्या हो रहा है कि मैं जब किसी विशेष तरह से देखूं तो उसके हिसाब से परिणाम पैदा हो जाये! तब यह बात समझ में आने लगी कि अनिश्चितता ब्रह्माण्ड का निश्चित गुण है! इस ब्रह्माण्ड का एक अभिन्न गुण है। इसमें हर चीज निश्चित नहीं है। प्रभु ने दो संसार बनाये हैं एक जड़ संसार और एक चेतन संसार। निश्चितता, याने न्यूटन का भौतिक शास्त्र जो निश्चितता वाला है, वह मात्र जड़ संसार पर लागू होता है। चेतन संसार को आप जड़ नियमों में नहीं बांध सकते क्योंकि चेतन संसार ने ही ब्रह्माण्ड के नियम बनाये हैं और चेतन संसार ही इन नियमों का उल्लंघन करने का अधिकार भी रखता है। पूर्ण विज्ञान बिना गणित की क्लिष्टता के समझ में नहीं आता। गणित भगवान् की भाषा है जिस भाषा में वह ब्रह्माण्ड की रचना करता है। उस गणित की कूट भाषा को समझ सकें तो हम भगवान् की भाषा को समझ सकते हैं लेकिन फिर भी एक सामान्य भाषा से भी उन बातों को मोटे तौर पर तो समझ ही सकते हैं कि जो अनिश्चितता है वह शिव का स्वातंत्र्य है, परमेश्वर का स्वातंत्र्य है जो प्रयोगों में अनिश्चतता की तरह हमको दिखाई देता

है। हम कहते हैं कि बहुत सारे सांख्यिकीय नियम चेतन संसार के भी पूर्वानुमान के दायरे में हैं। उसका कारण है और वह यह कि संसार में चेतन जीव भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं है। जैसे हम कह सकते हैं कि १० प्रतिशत कारें इस चौराहे से दाहिने मुड़ जायेगी ८० प्रतिशत कारें सीधे निकल जायेगी १० प्रतिशत बाएं मुड़ जाएँगी लेकिन हम किसी एक कार के बारे में नहीं बोल सकते कि यह कार किधर जायेगी? क्योंकि चौराहे पर पहुँचने पर वह निर्णय लेगा, हो सकता है अभी उसका मन हो बाएं मुड़ने का, वहाँ तक पहुँचते पहुँचते सोचा पहले दाहिने मुड़ जाता हूं क्योंकि वह जो अन्दर की तरफ चेतन संसार बैठा है, उसकी स्वतंत्रता, दाहिने मुड़ेगा, सीधा चला जायेगा, बाएं मुड़ते मुड़ते दाहिने मुड़ जायेगा! लेकिन फिर भी कुल मिला कर हम देखेगे कि १० प्रतिशत बाएं जायेगी, १० प्रतिशत दाहिने जायेगी ८० प्रतिशत सीधी जायेगी, ये गणित वैसा का वैसा ही रहता है। चाहे लोगो के मन बदल जाये तो होता क्या है सभी की इच्छाये भिन्न भिन्न दिशाओ में वेक्टर की तरह काम करती हैं और इन समस्त वेक्टर्स का जोड़ शून्य के नजदीक होता है, इसलिए भीड़ जड़ता की तरह काम करती है क्योंकि उस भीड़ के घटकों के विचारों में जो भिन्नता है उन भिन्नताओं का बीजगणितीय जोड़ शून्य के करीब होता है। जैसे अगर कभी एक ही नाव में कई लोग बैठे हों और सबको पतवार दे दी जाये। कोई सोचेगा नाव को उधर ले जाऊं, कोई चाहेगा इधर ले जाऊं, कोई चाहेगा नाव को तीसरी दिशा में ले जाऊँ, कोई आगे ले जाना चाहेगा, कोई पीछे ले जाना चाहेगा। वे सब अपने हिसाब से पतवार चलाएंगे तो नाव कहीं नहीं जायेगी वहीं की वहीं डोलती रहेगी क्योंकि सब लोगों के भिन्न भिन्न विचारों के वेक्टर्स का जोड़ है वह शून्य के करीब होता है, यह एक गणितीय अवधारणा है। यह भीड़ जितनी बड़ी होगी परिणाम उतने ही स्थिर होंगे। सन्देश यह कि भिन्नता में पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है, किसी की इच्छा पूरी नहीं होती। शिव का जो सबसे बड़ा गुण है वह है फ्रीडम, स्वातंत्र्य, वह पूर्णरूपेण स्वतंत्र है याने निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र है। हमारी भी

स्वतंत्रता है आप आते आते मत आओ, न आते आते आपको कोई मित्र पकड़ कर ले आया, आप यहाँ आ गये लेकिन आप निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र नहीं हो, आपकी स्वतंत्रता सापेक्षिक है, एक सीमा के अन्दर, इस शरीर से अंदर और समय और अन्तरिक्ष की सीमाओं के अन्दर ही आपकी स्वतंत्रता है, इन सीमाओं का उल्लंघन करने की स्वतंत्रता आप में नहीं है क्योंकि आप प्रत्येक क्रिया को क्रम से ही कर सकते हो। परमेश्वर शिव ही विक्रम है जो बिना क्रम के काम कर सकता है। वह एक साथ सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान, अनुग्रह सब कुछ कर सकता है। तो अगला हमारा जो सूत्र है "बंधन एवं मोक्ष के चक्र मात्र शिव के खेल हैं"। जब हमको लगता है कि हम बंधन में हैं और हम मोक्ष की ओर बढ़ना चाहते हैं तो अभिनव गुप्त जी कहते हैं कि **बंधन एवं मोक्ष के चक्र मात्र शिव के खेल हैं, ये चक्र शिव से अलग नहीं हैं क्योंकि भिन्नता की स्थितियाँ उदित ही नहीं हुई हैं। वास्तव में शिव को कुछ भी नहीं हुआ है,** शिव को कैसे बंधन में डाल सकते हो? आप कहते हो हम बंधन में हैं! अगर आपके उत्थान की बात करें तो क्या तुम पहले गिरे हुए थे? हम अगर यह बात करें कि हम इस कीचड़ से ऊपर उठाना चाहते हैं, तो ऊपर तो तब उठोगे जब पहले नीचे गिरोगे! क्या शिव नीचे गिर सकता है? क्या शिव को शिवत्वता से भी ऊपर उठाना संभव है? जब वह सर्वोच्च शिखर पर है तो वहाँ से और ऊपर उठकर कहाँ जाओगे? इसलिए सर्वोत्तम शिखर पर शिव है जो चैतन्य है, वह इस ब्रह्माण्ड का सर्वोच्च स्तर है और उसके बाद और ऊपर कुछ भी नहीं है। जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानते हैं तो पाते हैं कि हम सर्वोच्च शिखर पर ही हैं! ऊपर उठने की कोई गुंजाईश नहीं है! क्योंकि हम गिरे हुए भी नहीं थे, गिरना हमारा आभास था, बंधन हमारा भ्रम था ऐसा लगता था कि हम शायद बंधे हुए हैं, हम शायद सीमा में बंधे हुए हैं लेकिन ये हमारा अज्ञान था। ज्ञान जैसे ही मिलता है, हमारी अहंता ही शरीर से छूटकर अपनी चेतना में समा जाती है। चैतन्य का स्वरूप सदा स्वतन्त्र है, अगर हम कभी शांतचित्त होकर आँखें बंद

कर बैठे हैं, ध्यान करें सोचें कि कोई मेरा क्या बिगाड़ सकता है? क्या कोई मुझ तक आ सकता है? तो आप अन्दर से उत्तर पाओगे कि मेरा कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, कोई मेरी नाक काट सकता है, मेरे घर में चोरी कर सकता है, मेरे शरीर को भी उठा कर ले जा सकता है लेकिन मेरे साथ कोई कुछ नहीं कर सकता! क्योंकि न मैं ये शरीर हूँ, न मैं ये कपड़े हूँ, न मैं ये मकान हूँ, न मैं ये धन हूँ, क्योंकि जो मेरे अस्तित्व का केंद्र है, जो मैं हूँ, जहाँ से मैं बोल रहा हूँ, जहाँ मैं हूँ वहाँ तक किसी की पहुँच है ही नहीं। इसलिए मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जब कोई यह बात जानता है तो सर्वाधिक निडर हो जाता है, उसको किसी बात का भय नहीं सताता, हम भयभीत क्यों होते है? मेरा नुकसान नहीं हो जाये, मैं बिस्तर नहीं पकड़ लूँ, मैं बीमार नहीं हो जाऊँ, कोई मेरी बेईज्ज्ती नहीं कर दे, इन सब बातों से हम भयभीत होते हैं, लेकिन जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानते हैं तो समस्त भय अदृश्य हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि हमारे धन की रक्षा हम नहीं करें, मकान की रक्षा नहीं करें, धन नहीं कमाएँ, अपने बच्चों का पत्नी का ध्यान नहीं रखें, लेकिन इन सबको करते हुए फिर वही जागरण की बात कि हमको जागरूक रहना है। मैं ये नहीं हूँ ये तो मेरा संसारिक कर्तव्य है जो मैं कर रहा हूँ, बच्चो का काम करना है, पत्नी का काम करना है, रूपये पैसे कमाना है, सेवा करना है, धंधा करना है, ये सब करना है, लेकिन इन सबके करने के बाद भी यह बात क्षणभर को भी हमें विस्मृत न हो कि मैं ये नहीं हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप तो चैतन्य है जो कोई मेरा कुछ बिगाड़ ही नहीं सकता और यही बोध, यही ज्ञान आनंद का सर्जक है। उस आनंद को कोई छीन कर बता दे! यह हमारा स्वभाव है, कोई हमसे धन दौलत सब कुछ छीन सकता है, लेकिन हमारा स्वभाव कोई नहीं छीन सकता। अगर आनंद ही हमारा स्वभाव है तो हमसे उस स्वभाव को छीनने का अधिकार किसी को है ही नहीं। ये केवल बोलने की बातें नहीं हैं, न कोई शुष्क सैद्धांतिक बातें हैं, ये जो बातें हैं सचमुच में छोटी छोटी बातें हैं जो हम सतत अपने दिमाग में रख सकते हैं, दिनभर के कार्य

करते समय, दुकानदारी करते समय, काम धंधा करते समय, खेती बाड़ी करते समय जो भी हमारा काम है उसे करना ही है। लेकिन ये सब करते करते भी अगर हम जागरूक रहें, संसार के प्रति हमारी दृष्टि स्थिर रहें, हम विचारों में बह न जाएँ, जागरूकता बनी रहे कि यह सब संसार का खेल है और मैं जहाँ खड़ा हूँ मुझ तक किसी की पहुँच नहीं है। यह आनंद का चरम शिखर है। यह सोचकर कि तुम शिव हो तुम अपने आपको मुर्ख तो नहीं बना रहे अथवा तुम वास्तव में शिव हो? तुम कैसे जानोगे? कभी कभी आपको ऐसे लगेगा शिवोऽहम् करते करते हम कहेंगे कि हम तो शिव हैं तुम मेरा क्या बिगाड़ लोगे। इसके दो हिस्से है, एक यह चिंतन करना कि मैं शिव हूँ और दूसरा संसार को कहना कि मैं शिव हूँ। दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। अगर हम संसार को कहेंगे "मैं शिव हूँ" तो इतनी जोर की चपत पड़ेगी कि समझ में आ जायेगा कि मैं शिव नहीं हूँ, ऐसी चपत पड़ेगी कि हमारी आँखे खुल जायेगी कि हम शिव नहीं हैं, क्योंकि संसार में जैसे तुम शिव शिव करोगे कि मैं शिव हूँ मैं शिव हूँ तो पक्का समझो कि कहीं बुरी ठोकर लगेगी, जबर्दस्त ठोकर लगेगी क्योंकि ये अहंकारोक्ति है कि मैं शिव हूँ। ***मैं शिव हूँ संसार में बोलोगे तो अहंकारोक्ति है और ये अनुभव करोगे तो ज्ञान है*** दोनों में बहुत अंतर है। अहंकारोक्ति ठोकर लगायेगी, अहंकार गिरता है। ऊपर से पत्थर की तरह गिरता है, टूटता है और चोट लगाता है, तब बहुत दर्द होता है। लेकिन अगर तुम चिंतन करोगे कि मैं शिव हूँ, तो तुम शिवत्वता की ओर बढ़ते चले जाओगे, तुम्हारा बोध होना जरूरी है कि मैं शिव हूँ, तुम्हारा चिल्लाना जरूरी नहीं कि मैं शिव हूँ। महसूस करो, जानो कि मैं शिव हूँ, शिव की दृष्टि से संसार को देखो, शिव की दृष्टि से सहनशील बनो, शिव की दृष्टि से स्थिर चित्त हो जाओ कि हृदय सुख दुःख से परे हो जाये, सुख दुःख एक जैसा लगने लगे। आपका हृदय इतना मजबूत हो जाये कि सब कुछ सहने के लिए तैयार हो, तो फिर यह कहने की जरूरत ही नहीं कि तुम शिव हो। क्योंकि कहने से क्या तात्पर्य? किसी पड़ौसी को बुलाकर आप अगर कहोगे कि भैया मैं शिव

हूँ तो वह बोलेगा मैं क्या करूँ? तुम्हारी पूजा करूं क्या? ठीक है बैठे रहो घर पर। वह आपका अहंकार है लेकिन अगर आप शिव हो और ये आप अनुभव करते हो तो फिर आपका प्रेम का दायरा पूरे ब्रह्माण्ड को अपने में समेट लेगा। शिव ही अपने आपको जान सकता है। कोई दूसरा शिव को नहीं जान सकता, कोई दूसरा है ही नहीं! इसलिये शिवत्वता अनुभव की बात है और यही कारण है गुरुदेव भी कई बार कहते थे कि यह बात सड़क पर करने की नहीं है, अद्वैत की बातें उन्ही लोगो के बीच में करो जो अद्वैत में रुचि रखते हों और समझने की योग्यता और इच्छा रखते हों। आप सड़क पर जाकर भाषण सुनने बुलाओ तो ये कोई मायने नहीं रखता। इसलिए किसी की कोई आलोचना मत करो, सब अपनी जगह ठीक हैं, जो पूजा पाठ करते हैं, सेवा पूजा करते हैं, तीर्थों में जाते हैं, पवित्र नदियों में नहाते हैं, जो अनुष्ठान करते हैं, व्रत त्यौहार करते हैं, जप तप करते हैं सब अपनी जगह ठीक हैं। क्योंकि वे भी शिव हैं और यह शिव का ही खेल है। वह भिन्न भिन्न रूपों में स्वयं खेल रहा है। लेकिन फिर भी आपकी आन्तरिक जागरूकता जरूरी है कि मैं शिव हूँ। यह बोलने की जरूरत नहीं कि मैं शिव हूँ, बस चिंतन जरूरी है। आज अपनी बात इतनी ही। गुरु नारायण ----------

बोधपञ्चदशिका- ९

आज दिनांक २५ जनवरी २०१८ गुरुवार का दिवस है और हरिहर त्रिक आश्रम के साप्ताहिक कार्यक्रम में आप सभी का स्वागत है। बोधपञ्चदशिका का अध्ययन अपने अंतिम चरण में है। आज हम अंतिम दो सूत्रों का अध्ययन कर उसको समझने का प्रयास करेंगे। पिछले कुछ सप्ताह में जब से हम बोधपञ्चदशिका पढ़ रहे हैं हमने एक ही बात को गंभीरता से समझने का प्रयास किया है कि पूरा निर्मित विश्व और परमेश्वर शिव दोनों अभिन्न रूप से एक ही सत्ताएं हैं, एक ही सत्ता के दो नाम हैं शिव और संसार। आत्म बोध मतलब वास्तविक परिचय और यही अध्यात्म का अंतिम लक्ष्य है। यही बात परमेश्वर के साथ भी है वह भी सृष्टि का निर्माण आत्म बोध के लिया करता है, कई

आध्यात्मिक मतों में ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वी पहले से थी लेकिन विज्ञान भी इस बात से असहमत है कि पृथ्वी सनातन है। यह सत्य है कि पृथ्वी लम्बे समय से है, विज्ञान मानता हैं कि करीब १३ अरब वर्षों से पृथ्वी अस्तित्व में है लेकिन सनातन नहीं है। इसका भी कहीं न कहीं जन्म हुआ है। जो कुछ दिखाई देता है वह शिव ही है। शैव दर्शन मानता है कि एक बिंदु से विश्व का अविर्भाव हुआ है। ऐसी स्थिति में यह समस्त भिन्नता न केवल एक स्रोत से विकसित है वरन आपस में किसी न किसी तरह जुड़ी भी है क्योंकि एक स्रोत से विकसित अभिव्यक्ति एक शरीर की तरह या एक पेड़ की तरह अविभाजित ही होती है। हम जानते हैं कि पृथ्वी को सूर्य आकर्षित करता है, पृथ्वी चंद्रमा को आकर्षित करती हैं, लेकिन इतनी दूर ये आकर्षण शक्ति जाती कैसे हैं ये प्रश्न अनुत्तरित था। यह गुरुत्वाकर्षण संपन्न कैसे होता है? कैसे होता है इतनी दूर जाकर आकर्षण? अध्यात्म तो अंतरवर्ती अंतरिक्ष की विधायक सत्ता सदैव से मानता आया है लेकिन विज्ञान मौन था! इस पहेली को हल करने मैंक्सवेल आये, फैराडे आये, बोहर आये जिन वैज्ञानिको ने एक इलेक्ट्रो मेग्नेटिक फील्ड की थ्योरी दी कि एक इलेक्ट्रो मेग्नेटिक फील्ड है जो एक समुद्र की सतह की तरह है, पूरे ब्रह्माण्ड में फैला हुआ है, उसमें ऐसी लहरें आती हैं जैसी समुद्र में लहरे आती हैं। पूरा अन्तरिक्ष अस्तित्वहीन, सत्ताहीन नहीं है। रास्ते में अगर कुछ नहीं है फिर यह प्रश्न आता है कि इतनी दूर से यह आकर्षण कैसे संपन्न हुआ? लेकिन अब हम यह जानते हैं कि बीच में एक निरंतरता है, जो अन्तरिक्ष हैं वह एक विधायक संरचना है, इसकी बनावट में सूक्ष्मतर इकाइयाँ हैं, उसके अपने भौतिक गुण हैं! यह मुड़ता भी हैं जैसे एक तानी हुई चादर पर भारी गेंद रख देने से चादर झुक जाती है और उस भारी गेंद के पास चादर पर रखी अन्य छोटी गेंद लुड़क कर बड़ी के पास आ जाती है मानो दोनों के बीच आकर्षण शक्ति काम कर रही है ! उसी तरह किसी बड़े अन्तरिक्षीय पिंड के गुरुत्व के कारण मुड़े हुए अंतरिक्ष पर जब कोई ग्रह चलता हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह उसके आस पास चक्कर

लगा रहा है, यह भौतिक शास्त्र है, जिसे आधुनिक भौतिक शास्त्र कह सकते हैं जो पिछले करीब १०० – १५० वर्षों में विकसित हुआ है। इस सबको कहने के पीछे तात्पर्य यह है कि ये अंतरिक्ष में छिटके हुए अनगिनत पिंड कोई भिन्न भिन्न सत्तायें नहीं हैं वरन एक दूसरे पर निर्भर हैं तथा पूर्ण सृष्टि एक इकाई के रूप में है। सब कुछ, अन्य सब कुछ से अभिन्न रूप से जुड़ा है। इस बात का अगर हमको बोध हो जाता है तो हमारा दृष्टिकोण पूरी तरह से बदल जाता है। हम हमारे शरीर की तरह इस ब्रह्मांड को देखने लगते हैं। यह मेरा ही विकास है, सिवाय मेरे और कुछ भी नहीं है, सारा ब्रह्माण्ड शिव के सिवा और कुछ भी नहीं है। जो अंतिम निष्कर्ष है वह यह कि शिव अपने साम्राज्य में अकेला ही रहता है, वहाँ और कोई नहीं है। एक पूरे साम्राज्य में वह अकेला ही है, उसके सिवाय कोई दूसरा है ही नहीं और वह इस खेल में अपने आप को ही विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करता है, और वापस अपने आप में उस खेल को समेट लेता है। उस अकेलेपन को दूर करने के लिए वह सब कुछ रचना करता है, उससे खेलता है, जैसा एक बच्चा घरौंदे बनाता है, खिलौने जमाता है फिर उनको बिगाड़ता है, फिर जमाता है, इस तरह से परमेश्वर शिव का खेल है। उस खेल के सिवाय यह कुछ भी नहीं है। हम यहाँ आज अंतिम दो सूत्र समझ रहे हैं, ये अंतिम दो सूत्र बड़े विशिष्ट हैं, क्योंकि यह ज्ञान का शिखर है, चरम शिखर का अंत में आना जरूरी है। हम कहते हैं कि बंधन है, हम बंधन में हैं और हमको मोक्ष चाहिये। संसार का एक चक्र है जिसमें हम पिसते चले जाते हैं, जीवन है, मृत्यु है, पुनर्जन्म हैं। फिर जरा व्याधि, मृत्यु और फिर पुनर्जन्म, फिर एक जन्म के बाद दूसरा जन्म। कभी हम पेड़ बनते हैं, कभी छिपकली कभी तितली कभी कुछ कभी कुछ इस प्रकार से हमारे भिन्न भिन्न प्रकार के जीवन चक्र चलते हैं। ये हमारे बंधन के चक्र हैं। दूसरा चक्र है मोक्ष का जहाँ पर ये सारी भिन्तायें समाप्त हो जाती हैं, हृदय बोध से भर जाता है और शरीर छूटने के बाद जीवात्मा परमेश्वर में लीन हो जाता है। लेकिन इन दो चक्रों में मूलतः कोई भेद नहीं है!

परमेश्वर शिव के अस्तित्व में दोनों का वास है। बंधन का चक्र भी परमेश्वर शिव है और मुक्ति भी परमेश्वर शिव है। भेद तो वास्तव में हुआ ही नहीं, भेद तो हमारी प्रतीति है। सत्य में कोई भेद है ही नहीं क्योंकि जो बंधन है वह सिवाय अज्ञान के कुछ भी नहीं है। जो हम नहीं जानते, जिस बात का हमको बोध नहीं है वही हमारा बंधन है। और हम जब यह जान लेते हैं कि सच में हम छले जा रहे हैं तो यही बोध है, यही मुक्ति है। जब जान लेते हैं कि "हम बंधन में हैं" यह बात हमारे जेहन में भरी जा रही है, तो हमारी आँखें खुल जाती हैं। सत्य तो यह है कि बंधन कुछ भी नहीं है, जो जैसा है वह परमेश्वर शिव है। रंगमंच पर अगर कोई व्यक्ति सुपरमैन बन जाता है, एक दुष्ट बन जाता है, तो वास्तव में सुपरमैन के रूप में भी वह छल कर रहा है और दुष्ट के रूप में भी वह छल कर रहा है। क्योंकि दोनों वास्तविक स्वरूप से अलग हटकर अभिनय कर रहे हैं। उनकी जो वास्तविकता है उससे वे अलग दिखाई दे रहे हैं। एक बहुत बदमाश लड़के को सुपरमैन का रोल दे दिया और एक बहुत सज्जन को दुष्ट का रोल दे दिया उससे क्या होगा? कुछ नहीं। क्योंकि ये तो छल हैं, जो बाहरी दिखावा है, जो हमको दिखाई दे रहा है वह सिवा छल के कुछ भी नहीं। तो फिर मोक्ष क्या हैं? **मात्र यह बोध कि हम छले गये हैं इसका नाम मोक्ष है**। यह बोध होना ही मोक्ष है। फिर अगला प्रश्न आता है कि हमको छल कौन रहा है? ये छलिया बैठा कहाँ है जो हमको छल रहा हैं? अगर किसी और ने हमको बंधन में करके रखा होता, तो ऋषिगण कहते हैं कि तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते थे। अगर कोई छलिया कहीं दूर बैठकर तुमको बंधन में बनाकर रखता तो तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते थे। लेकिन ये छल तुम स्वयं के साथ कर रहे हो, अपने आप को छल में डाले हुए हो! और जिस दिन तुम तय कर लो "**अब लो नसानी, अब न नसैहों**" अर्थात् - जैसे कृष्ण माँ यशोदा को कहते हैं "अभी तक मैंने अपने आपको छला जाने दिया लेकिन अब नहीं, बहुत हुआ, अब मैं इस छल को इंकार करता हूँ" तो तुम तत्क्षण मुक्त हो। याने कि हम अपनी इच्छा से ही बंधन में हैं। ज्ञान हमारा

वास्तविक स्वरूप है, ज्ञान बाहर से नहीं आता, अगर बाहर से आता तो किताबों से मिल जाता, खरीदने से मिल जाता लेकिन ज्ञान तो अन्दर से आता है, बाहर से कौन सा ज्ञान आता है? जिसको हम जानकारियाँ बोलते हैं या चातुर्य बोलते हैं वह बाहर से आता है। वकालत का ज्ञान, डॉक्टरी का ज्ञान, दुकान चलाने की चतुराई, कैसे तैरो, कैसे कार चलाओ ये सब जानकारियाँ हमको बाहर से मिलती हैं जिसको हम क्रमबद्ध ज्ञान कहते हैं। लेकिन जो वास्तविक ज्ञान हैं वह हमको अन्दर से ही मिल सकता है क्योंकि ज्ञान हमारा वास्तविक स्वरूप है, हम कभी उस ज्ञान से विमुख हुए ही नहीं, हम उस ज्ञान से दूर हुए ही नहीं, हमने मात्र अपने धन को अलमारी में छिपा दिया और भूल गए थे, बाहर ढूंढ रहे थे। अंतर्दृष्टि से जब हम देखेंगे तो हमको बोध होगा कि हम ही शिव हैं। सतत इस चिंतन को करते करते यह बोध होना स्वाभाविक है। हमको सतत इस चिंतन और जागरण में रहना जरूरी है कि हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है। हम सब संसार की विषमताओं के भय से भयभीत हैं लेकिन अगर हम शांतचित्त यह चिंतन करें कि मैं तो इस शरीर में रहने वाला चैतन्य हूँ, तो हमारे ये भय शनै शनै समाप्त हो जाते हैं। आप अपने आप को जान लो तो मुक्त ही हो। हम अपनी मर्जी से अपने आपको नहीं जानना चाहते। हम तो इस दौड़ में शामिल होंगे, इस खेल में खेलेंगे तो खेलो। हम तय कर लें कि हम पत्ते खेलेंगे और हम एक दूसरे को पत्ते नहीं बताएँगे तो खेलो, बारह घंटे तक खेलते रहो तब तक आप बंधन में हो, जिस समय हम तय कर लेते हैं इसको एक तरफ रखो चलो घूमने चलते हैं, मुक्त हो गये हम याने इतनी सरल सी बात है। हमको इच्छा ही जागृत करना है और हम मुक्त हैं, हमको जानना है कि हम छले जा रहे हैं, छलने वाले भी हम स्वयं ही हैं, कोई बाहर से आकर नहीं छल रहा, हमने तय किया कि चलो हम खेलते हैं, और खेल में मजा ही तब हैं जब हम छले जाएं क्योंकि छले न जायेंगे और सभी लोग शिव हो जायेंगे तो संसार नष्ट हो जायेगा, सारे पत्ते खोल कर भला खेल में क्या मजा आएगा? तो इसलिए हम छले जाने

को तैयार हैं। हम बोलते हैं कि ठीक हैं चलने दो और इस संसार की दौड़ में शामिल होते चले जाते हैं, इसमें जो संसार में दौड़ रहे हैं वे भी शिव हैं सभी कुछ शिवता है और इसमें समस्त भिन्नतायें भी उतनी ही जरूरी हैं जितनी कि कार के भिन्न भिन्न पुर्जो में भिन्नता होना जरूरी है। सारे नट बोल्ट एक जैसे नहीं होंगे, सारे टायर जरूरी नहीं कि एक जैसे हों, जरूरी नहीं कि सभी पुर्जे एक जैसे हो, सभी अलग अलग पुर्जे हैं और उन सबका योगदान ही वह कार बनाता है। अगर सभी पुर्जे एक जैसे लाकर रख देंगे तो किस काम के? किसी काम के नहीं। ऐसे ही संसार में हम सब लोग एक जैसे होंगे तो संसार विनष्ट हो जायेगा। संसार में सब लोगों की बराबर उपादेयता है। अगर हम कहें कि संसार में सिर्फ ऋषि लोग ही उपादेय हैं या हम ये कहें कि यहाँ पर सज्जन लोगों को ही होना चाहिये, तो ऐसा बिलकुल भी नहीं है। ब्रह्माण्ड का आधार ही विभिन्नता है और इस विभिन्नता में एकता देखने का ही नाम अद्वैत दर्शन है। संसार में जितने लोग हैं सज्जन हैं, दुर्जन हैं, अपने हैं, पराये हैं, इस संसार के चलते रहने के लिए सभी बराबर से ही जरूरी हैं, क्योंकि अगर आपने कुछ कर्म किये हैं, गलत कार्य किया है तो उसके फल के रूप में एक दुर्जन सामने आयेगा ही, जब आप कुछ अच्छा कर्म करोगे तो प्रतिफल के रूप में कुछ अच्छा सामने आयेगा ही। यह दृष्टि जब विकसित होती चली जायेगी तब चारों ओर हम सत्य दर्शन कर सकेंगे। तब हमारी दृष्टि इतनी संकीर्ण नहीं रहेगी कि हम मात्र एक ही चीज देखें, जैसे मैंने ऐसा क्या किया कि मुझे ऐसी सजा मिली? देखो इतने से बच्चे ने क्या किया उसको कितनी बड़ी सजा मिली? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारी दृष्टि सीमित होती है। जब हमारा दृष्टिकोण अतिसीमित होता है तो हम परमेश्वर के दिव्य समीकरण को नहीं देख पाते, वह दिव्य समीकरण इतना बड़ा है कि जिसका कुछ हिस्सा हमारे भूतकाल और पूर्जन्मों से सम्बंधित है, कुछ हिस्सा हमारे भविष्यकाल से सम्बंधित है और चूँकि हम काल के बंधन में हैं इसलिए कुछ छोटा सा हिस्सा जो वर्तमान काल से सम्बंधित है वह हमको दिखाई देता

है। और वह हमको सम याने न्याय सम्मत दिखाई देगा ही नहीं, हमको लगेगा यह तो अन्याय है। परमेश्वर अन्याय क्यों करेगा? किसी कवि ने कहा था "एक झोली में फूल पड़े हैं एक झोली में कांटे रे, कोई कारण होगा"। अकारण नहीं है, किसी को सुख मिला है, किसी को दुःख मिला है, किसी के हिस्से में तन्हाई आयी है किसी के हिस्से में खुशियाँ आई हैं तो इन सबके पीछे कोई कारण होगा। अकारण तो हो ही नहीं सकता ऐसा क्योंकि इस समीकरण को बनाने वाला कोई पूर्वाग्रही तो नहीं था, किसी एक धर्म अथवा दर्शन से सम्बंधित तो नहीं था, किसी एक व्यक्ति से सम्बंधित तो नहीं था। इस समीकरण को जब बनाया तो उसने समीकरण दोनों तरफ से संतुलित ही रखा, जो उधार लो उतना भरो, जितनी बेईमानी करो उतना धोखा खाओ, जितना सुख उठाया उतना दुःख उठाओ और इस तरह से वह सारे समीकरण, दिव्य समीकरण पूर्ण होते हैं। यही परमेश्वर का काव्यात्मक न्याय है। हमको वह समीकरण का छोटा सा हिस्सा दिखाई देता है क्योंकि हम समय के अधीन हैं, हम नियति की वजह से कार्य – कारण रिश्ते में बंधे हैं, काल के कारण समय से बंधे हैं, इसलिए हमको समीकरण का पूर्ण विस्तार दिखाई नहीं देता और इसीलिए हमको अक्सर अन्याय दिखाई देता है। अगर उस समस्त समीकरण को देख सकें कि जहाँ से हम चले थे, जहाँ पर हम हैं तथा जहाँ हमारी आगे की दिशा है तो यह भ्रम दूर हो जायेगा। इसके बीच में क्या हुआ? तो उसी बात का जवाब यहाँ पर अभिनवगुप्तजी कहते हैं कि जब बोध होता है, अंतरात्मा को हम जानने लगते हैं, अपने वास्तविक स्वरूप को जिस क्षण पहचानते हैं, तो ऐसा लगता है कि आदि काल से अब तक कुछ भी नहीं हुआ! हम जहाँ थे वही हैं, जो थे वही हैं, जैसे थे वैसे ही हैं कुछ भी नहीं बदला, शिव जैसा था वैसा ही है, वह एक खेल खेलकर वापस आ गया। एक बच्चा खेलने जाता है, घूम फिर कर घर आ जाता है, इसी तरीके से एक ब्रह्माण्ड का निर्माण किया और हमको ऐसा लगने लगा कि हमने बहुत कुछ सहा। सुख है, दुःख है, जीवन है, जरा है, मृत्यु है, अज्ञान के

चक्र में हमको सब कुछ दिखाई देता है। ज्ञान की दृष्टि से देखें तो कुछ भी नहीं हुआ, दोनों चक्र परमेश्वर शिव के भीतर हैं। कभी आप अपनी आँख के किनारे में एक अंगुली डालो तो आपको सब चीजे दो दो दिखाई देने लगती हैं, यहाँ पर अगर आप एक मूर्ति रखो तो दो दिखाई देंगी एक ज्ञान की है एक अज्ञान की, लेकिन दोनों तो एक ही हैं, एक ही दो दिखाई दे रही है, एक ज्ञान का चक्र है, एक अज्ञान का चक्र है। अब क्या ये दो चक्र हैं? ज्ञान का चक्र और अज्ञान का चक्र मूल रूप से कुछ भी नहीं हैं। बंधन और मोक्ष दोनों एक ही हैं हमको दो चीजे दिखाई देती हैं। एक ज्ञान का शिखर हैं जहाँ पर कि हम दोनों में अभेद को समझ लें, जब हम कहते हैं कि इस कुर्सी में और मुझ में कोई फर्क नहीं है, चाँद और सितारे में फर्क नहीं है तो फिर जब सब एक हैं तो फिर बंधन और मोक्ष दोनों अलग कैसे हो सकते हैं? जब सब कुछ एक है तो बंधन और मोक्ष भी एक हैं, उन दोनों के बीच में कुछ भी भिन्न नहीं है। बंधन और मोक्ष के चक्र मात्र शिव के खेल हैं, क्योंकि विभिन्नता की स्थितियाँ उदित ही नहीं हुई। वास्तविकता में शिव को कुछ भी नहीं हुआ है याने ये तब समझ में आता हैं जब हम अपने वास्तविक स्वरूप पर ठहरने का प्रयास करते हैं, हमारी आरंभिक धारणा होना चाहिये कि "मैं चैतन्य हूँ"। उसके बाद जो हमारी अंतिम भावना होगी वह क्या होगी? सब कुछ मैं हूँ। पहले तो यह धारणा विकसित होती है कि शरीर मैं नहीं हूँ, मेरा मन मैं नहीं हूँ, मेरी बुद्धि मैं नहीं हूँ, मेरा धन मैं नहीं हूँ और मेरा जो कुछ हैं मेरे रिश्तेदार, मेरा मकान, मेरा गाँव, मेरी दुनिया, पहले तो इन सबसे मैं अपने आपको विलग कर लूँ कि मैं चैतन्यरूप हूँ, यह शरीर भी मैं नहीं हूँ। ये अध्यात्म का पहला स्तर है। जब हम यह समझ लें कि हम चैतन्य हैं। यह स्तर ईश्वरीय चेतना का है, लेकिन जो अंतिम स्तर हैं वह हैं शिव चेतना या सार्वभौम ईश्वरीय चेतना का जहाँ हमें यह बोध हो कि न केवल ये शरीर मैं हूँ वरन संसार के समस्त शरीर मैं हूँ, न केवल ये धन मेरा है वरन संसार का समस्त धन मेरा है, न केवल ये गाँव मेरा हैं वरन पूरा ब्रह्माण्ड मेरा है। सबसे पहले हम

अपने आपको आत्मा रूप समझें, सीमित हो जाएं और उस सीमितता को विशालता में बदल दें फिर आज क्या हैं हम? आज और उस अनुभव के बीच में बहुत बड़ा फर्क हैं, आज हम अपने आपको इस चमड़ी के भीतर समझते हैं और इस चमड़ी के बाहर संसार को समझते हैं। स्वचेतना को समझने के बाद उस चेतना को विस्तार देंगे, अन्दर की चेतना को समझने तक आधा रास्ता पार हुआ है, आधी जानकारी मिली है कि मैं चैतन्य हूँ लेकिन पूर्ण बोध यह है कि न केवल मैं चैतन्य हूँ, पूरा ब्रह्माण्ड मैं ही हूँ, सारा ब्रह्माण्ड चैतन्य है। ये मेरे चैतन्य स्वरूप का विकास है, न केवल ये शरीर मैं हूँ वरन समस्त शरीर मैं हूँ यही पूर्ण ज्ञान हैं और जब ये होता है तो उसको समझ में आता हैं कि आदिकाल से, जब ब्रह्मांड का अवतरण हुआ था तब से, आज तक कुछ भी नहीं हुआ। जो कुछ हुआ वह यह कि एक खेल खेल कर हम घर आ गये, अगर हम राम जी का, सीता जी का, रावण का रोल करके घर आ जाएं और बोलें क्या हुआ? कुछ नहीं हुआ, हम जैसे थे वैसे ही हैं तो शिव जैसा था वैसा का वैसा फिर लौट जाता है क्योंकि उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो परिवर्तित हुआ हो। अब इसके बाद हमारी एक सामान्य भाषा होती है कि वह बहुत उच्च स्तर का इन्सान है, वह बहुत गिरा हुआ इन्सान है और हम कहते हैं कि योगी उठने लगा हमने कई बार आश्रम में ये बात समझी है कि योगी का आरोहण होता हैं शिव के स्तर तक। समझ के इस स्तर पर अभिनव गुप्त पादाचार्य जी अंतिम रूप से कहते हैं कैसा आरोहण? पहले क्या शिव गिरा हुआ था? शिव गिर ही नहीं सकता। और उसका आरोहण भी नहीं हो सकता क्योंकि वह जिस स्तर पर है उससे ऊपर कुछ हैं ही नहीं। इसलिए शिव का न तो अवरोहण हैं न आरोहण हैं न वह नीचे उतरा हैं, क्योंकि ऊपर तो वह चढ़ेगा जो गिर चुका है या गिर रहा है, वह जहाँ था वही है तो कैसा आरोहण, कैसा अवरोहण, इसलिए पूरे ब्रह्माण्ड में परमेश्वर शिव जैसा था वैसे ही है। इस खेल के अन्दर हमको कुछ आरोहित होता प्रतीत होता है, कुछ अवरोहित होता प्रतीत होता है, न आरोहण है न अवरोहण है

इसलिए वह शिव किसकी तुलना में आरोहित होगा और किसकी तुलना में गिरेगा, क्योंकि गिरना उठना सापेक्षिक क्रियाएँ हैं। इस जगह से वस्तु नीचे जाती हैं तो हम कहते हैं गिर रही हैं, ऊपर जाती हैं तो कहेंगे उठ रही है। मेज पर रखी वस्तु फर्श पर आ जाये तो कहेंगे गिर गयी, अगर वस्तु छत पर चली जाये तो कहेंगे उठ गयी लेकिन ये वक्तव्य मेज के सन्दर्भ में हैं। प्रत्येक उठने गिरने जैसी गति के लिए हमको एक सन्दर्भ जरूर चाहिये वह सन्दर्भ शिव स्वयं ही हैं। मेज भी शिव है वस्तु भी शिव है तो शिव के सन्दर्भ में शिव की उठने या गिरने की बात करना ही हास्यास्पद है। इस ब्रह्माण्ड का एक मात्र निरपेक्ष सन्दर्भ बिंदु शिव है उसकी तुलना में वह स्वयं न उठ सकता है न गिर सकता है क्योंकि वह जहाँ खड़ा है वह ही सन्दर्भ बिंदु है इस बात को गहराई से समझना जरूरी है कि हम कहे कि कलेक्टर ऑफिस से मेरा घर एक किलोमीटर पर हैं तो कलेक्टर ऑफिस से कलेक्टर ऑफिस कितनी दूर हैं? चाहे वह जगह बदलता जाये तो भी कलेक्टर ऑफिस से कलेक्टर ऑफिस दूर हैं ही नहीं! संसद भवन से संसद भवन कितनी दूर है? दूरिया हैं कहाँ? संसद भवन से संसद भवन की दूरी शून्य है, अब वह जगह बदल दी संसद भवन ५० किलीमीटर दूर स्थापित हो गया तो भी संसद भवन से संसद भवन की दूरी शून्य ही रहेगी। क्योंकि हम स्वयं से स्वयं की दूरी कैसे कहेंगे, तो शिव से शिव कैसे ऊपर उठेगा और शिव से शिव कैसे नीचे गिरेगा? जब यह बात समझ में आ जाती है तो यह समझ में आ जाता है कि शिव न गिरता है न उठता है, वह तो मात्र खेलता है इसलिए न कुछ आरोहण है न कुछ अवरोहण है, न कुछ बंधन है, न कुछ मोक्ष है, न कुछ पाप है न कुछ पुण्य है। लेकिन यहाँ पर एक सावधानी जरूरी है। इस बात का दुरुपयोग या इसे गलत समझना बहुत आसान है, काश्मीर शैव दर्शन के जो गूढ़ सिद्धांत हैं इनको गलत समझना बहुत आसान है। कल जाकर हम सड़क पर कह दें हम तो शिव हैं ना, अब से हम चाहे जो करेंगे क्योंकि हम तो शिव हैं। और हम कह दें कि न हमको पाप है न हमको पुण्य है तो यहाँ पर गुरुजन कहते हैं कि तय समझो

तुमको बड़ी ठोकर लगेगी। क्योंकि शिवत्वता बोध की बात है चिल्लाने की बात नहीं है, अगर शिवत्वता का बोध है तो जब आप चलोगे तो शिव की तरह, बोलोगे तो शिव की तरह कोई कार्य करोगे तो शिवेच्छा के अनुसार, वहाँ पर न पाप है न पुण्य है। संसार के रूप में आये तो भी शिव से संसार की दूरी शून्य हैं। क्योंकि वही संसार है और वही शिव है, उसकी स्वयं से स्वयं से दूरी हमेशा शून्य ही होगी। और ये भी एक और कारण है कि हम परमेश्वर शिव को शून्य कहते आये हैं। उसकी अंतरिक्ष में दूरिया भी शून्य हैं और समय में दूरिया भी शून्य हैं क्योंकि स्वयं से स्वयं की दूरी कैसे हो सकती हैं, संभव ही नहीं है। मेरा मान अगर तीन है और आपका चार है तो हमारे मिलने से हमारा संयुक्त मान बारह हो जायेगा, तीन गुणित चार बराबर बारह, अर्थात कुछ मेरे अवगुण तुम ले लोगे कुछ तुम्हारे सद्गुण मैं ले लूँगा। लेकिन अगर हम दोनों में से एक का मान शून्य हो तो क्या होगा? दूसरे का मान कुछ भी हो दोनों का संयुक्त मान शून्य ही होगा। मतलब जब कोई शिव से सम्मुख होगा तो शिव ही हो जायेगा! इसी बात को तुलसीदासजी ने कहा था **जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।**

अब अंतिम बात भगवान् भैरव ने तीन महाशक्तियाँ थाम रखी हैं इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति, तीन शक्तियाँ हैं। वास्तव में इन तीनों शक्तियों का सम्मिलित स्वरूप है स्वातंत्र्य शक्ति। इसी स्वातंत्र्य शक्ति को हम प्रतीक रूप से पार्वती, दुर्गा, आद्या, काली, त्रिपुरसुन्दरी इन भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं, शक्ति शिव की अर्धांगिनी कहलाती हैं क्यों, क्योंकि शिव इसके बिना अपूर्ण हैं जैसे शक्कर मिठास के बिना अपूर्ण है। अगर शक्कर तो है मिठास उसके साथ होना ही है इसलिए हम क्या कह सकते हैं कि शक्कर की अर्धांगिनी मिठास हैं। ऐसे ही भगवान् भैरव ने अपने स्वभाव में तीन शक्तियाँ थाम रखी हैं याने भगवान् भैरव की तीन शक्तिया हैं लेकिन इन तीन शक्तियों का मूल एक ही शक्ति है जिसको स्वातंत्र्य शक्ति कहते हैं। स्वातंत्र्य याने निरपेक्ष स्वातंत्र्य, एक स्वतंत्रता हमारी भी हैं जेल में नहीं हैं इसलिए हम स्वतंत्र हैं, हम भारत के वासी हैं इसलिए

स्वतंत्र हैं। लेकिन फिर भी यह स्वतंत्रता सापेक्षिक स्वतंत्रता हैं। अगर हम कहें कि इसी क्षण मुझे वहाँ जाना है तो पंहुच नहीं सकते, कुछ करना चाहते हैं तो बाधायें आती हैं। हमारी स्वतंत्रता है लेकिन हमारी निरपेक्ष स्वतंत्रता नहीं है, सापेक्षिक स्वतंत्रता है। लेकिन परमेश्वर शिव की स्वातंत्र्य शक्ति निरपेक्ष रूप से स्वतंत्र हैं, बिना किसी और अपेक्षा के वह स्वतंत्र है। इसलिए उस स्वातंत्र्य शक्ति से इस ब्रह्माण्ड की जब संरचना होती हैं तो उसमें तीन शक्तियाँ काम करती हैं उन तीन शक्तियों को परमेश्वर ने भिन्न भिन्न काम सौपे हैं एक है इच्छा शक्ति, ये पहली मूल शक्ति है, परमेश्वर में अगर ब्रह्माण्ड को बनाने की इच्छा न होती तो ये ब्रह्माण्ड बनता ही नहीं और अगर ये ब्रह्माण्ड नहीं बनता तो फिर कौन पूछता कि शिव क्या है? कौन पूछता कि ब्रह्माण्ड क्या है? कौन पूछता कि विज्ञान क्या है? कौन कहता कि अध्यात्म क्या है? धर्म क्या हैं? अगर ब्रह्माण्ड न बनता शिव की इच्छा शक्ति न होती तो हम यहाँ कोई भी नहीं होते, सब शिव की तरह आनंदमग्न उसी के अस्तित्व में होते, आज भी हैं उसके अस्तित्व में लेकिन उस अस्तित्व के और हमारे बीच में एक पर्दा हैं कला, विद्या, काल, राग, नियति का जिसके कारण हम थोड़ी देर के लिए अलग कर दिए गये और वहाँ से हम इस खेल को खेल रहे हैं। इन तीन शक्तियों में से पहली है इच्छा शक्ति, जिसके उद्रेक से परमेश्वर ब्रह्माण्ड को बनाने के लिए उद्यत होता है, क्रिया शक्ति के द्वारा वह ब्रह्माण्ड का निर्माण करता है, वह अपने आप को ब्रह्माण्ड के रूप में प्रस्तुत करता है और ज्ञान शक्ति के द्वारा इस संसार से खेलता है, ज्ञान शक्ति से स्वात्म रूप में संसार का ज्ञान लेता है। ये तीनों शक्तियाँ भी अभिन्न हैं, ज्ञान से ही इच्छा और क्रिया से ही ज्ञान की सार्थकता है। परमेश्वर की इच्छा होते ही उसकी अभिव्यक्ति संपन्न हो जाती है अर्थात क्रिया और इच्छा अभिन्न ही हैं। जैसे मैं कुछ करूँ, कुछ चित्र बनाऊं, कोई कविता लिखूं, लेख लिखूं और फिर मैं उसका आनंद लूँ तो जो लिखने की प्रेरणा है वह इच्छा शक्ति है, लिखूं वह क्रिया शक्ति हैं, जब मैं उसका आनंद लूँ, मैं उसको पढ़ूं, मैं उसको प्रकाशित

करवाऊं और फिर उसका आनंद लूँ वह मेरी ज्ञान शक्ति हैं। मैं अगर कुछ करता हूँ तो फिर उसको जानता भी हूँ क्योंकि मैंने क्या किया ये मेरी जानकारी में होगा, तभी मेरी क्रिया पूर्ण होगी, तभी एक चक्र पूर्ण होता हैं। मैंने कुछ किया वह उसी क्षण मेरे ज्ञान में आता हैं, ज्ञान स्वयं सिद्ध है ज्ञान को सिद्ध नहीं करना पड़ता। जो मैं ब्रह्माण्ड में करता हूँ वह मैं जानता हूँ, शिव जो बनाते हैं संसार को वह जानते हैं, हम भी शिव के छोटे संस्करण हैं, हम भी बहुत कुछ जानते हैं, जो कुछ करते हैं वह हम जानते हैं, हम अपने आपको पहचानते हैं, अपने पाप कर्म को पहचानते हैं, अपने पुण्य कर्म को पहचानते हैं, हमको अपने आप से ज्यादा जानने वाला कोई नहीं है। मैं जितना मुझको जानता हूँ आप नहीं जानते इसलिए शिव की ज्ञान शक्ति इस ब्रह्माण्ड को जानती हैं और ये ज्ञान शक्ति उसको एक सूत्र में बांध कर रखती है। ज्ञान और क्रिया में अंतर नहीं है, एक ही शक्ति के दो हिस्से हैं लेकिन संसार में ये अलग अलग प्रतीत होते हैं। यहाँ पर क्रियाशक्ति से बनता है प्रमेयात्मक संसार, ज्ञान शक्ति से बनता है प्रमातृ याने "मैं", जो जानने वाला है ज्ञाता है वह बनता है, लेकिन दोनों के बीच कोई भेद नहीं है। अब ये ज्ञान का अंतिम पाठ जो अभिनवगुप्तजीजी समझा रहे हैं कि ज्ञान का शिखर क्या है? तुम और मैं में कोई फर्क नहीं, हम दोनों एक हैं और ये जो जानने की क्रिया हैं वास्तव में जानना और करना एक ही बात हैं। जब मैं किसी चीज को जानता हूँ तो मैं उसका निर्माण करता हूँ और जब मैं उसका निर्माण करता हूँ तो मैं उसको जानता हूँ। यह बात हमको कठिनाई से समझ में आती है कि जो जानते हैं हम उसका निर्माण करते हैं। लेकिन कुछ वैज्ञानिको को यह बात समझ आयी, जो देखा जाता हैं उनको निर्मित किया जाता हैं उन पर शक्ति का वरद हस्त था। जब प्रेक्षण नहीं किया जाता, उनको देखा नहीं जाता उस समय वे होते ही नहीं है! उनका अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। अब आप कहो कि जंगल में बहुत अच्छा एक संगीत बज रहा है लेकिन जब तक उसका कोई प्रेक्षक नहीं है, देखने वाला नहीं हैं, उस संगीत का आनंद लेने वाला नहीं है आप कैसे कहते हो

कि संगीत बज रहा है? क्योंकि जब तक कोई सत्यापित करने वाला नहीं है, जब तक कोई उसका आनंद लेने वाला नहीं हैं तब तक वह जड़ सत्ता अपना अस्तित्व भी सिद्ध नहीं कर सकती। इसलिए किसी भी जड़ सत्ता का अस्तित्व चेतन सत्ता सिद्ध ही नहीं करती उसको निर्मित करती है। हम जिसको 'सिद्ध करना' कहते हैं, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों उसको 'निर्मित करना' कहते हैं! याने आप इस ब्रह्माण्ड को निर्मित करते हो। हममें से एक भी जीव नहीं हो ब्रह्माण्ड में, आप, मैं कोई भी न हो तो ये संसार है यह कहने वाला भी कोई नहीं होगा। फिर यह "संसार है" का क्या मतलब? यह "है" परमेश्वर के हस्ताक्षर हैं। जब हम बोलते हैं यह संसार है, किताब है, ये आश्रम है, जो "है" शब्द है ये परमेश्वर के हस्ताक्षर हैं। "है" का मतलब अस्तित्व, अस्तित्व याने शिव। शिव का ही अस्तित्व समस्त संसार का अस्तित्व है, शिव के अस्तित्व और समस्त संसार के अस्तित्व में कोई भेद नहीं है, दोनों अभिन्न रूप से एक ही है, एक ही अस्तित्व के दो नाम हैं शिव और संसार। इन तीन शक्तियों पर भगवान् भैरव बैठे हुए हैं ये त्रिदल कमल जिसको हम एक प्रतीक रूप से बताते हैं कि तीन दल वाला कमल है, तीन पंखुड़ियों वाला कमल है जिस पर भगवान् भैरव बैठते हैं, ये तीन पंखुड़ियाँ क्या हैं? ये तीन पंखुडियाँ हैं क्रिया शक्ति, ज्ञान शक्ति और इच्छा शक्ति। ये तीनों शक्तियाँ सम्मिलित रूप से परमेश्वर शिव की स्वातंत्र्य शक्ति हैं, ये ही ब्रह्माण्ड का निर्माण करती हैं और ये ही परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप हैं, क्योंकि परमेश्वर का भी वास्तविक स्वरूप शक्ति के बगैर शून्य है कुछ भी नहीं है, शक्ति ही है जिसकी वजह से वह परमेश्वर, परमेश्वर है। भगवान् भैरव ने अपने स्वभाव में तीन महान शक्तियाँ थाम रखी हैं इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति एवं ज्ञान शक्ति। ये तीनों शक्तियाँ ही वह त्रिशूल हैं, जो त्रिदल कमल है, जिस पर ११८ भुवनों के सार भगवान् भैरव विराजमान हैं। भगवन भैरव ही सृष्टि का केंद्र हैं, परमशिव हैं। हमारा एक यूनिवर्स है, ब्रह्माण्ड है, जिसमें अरबों आकाशगंगाएँ हैं। ऋषियों के ध्यान में एक संख्या बार बार आती कि ऐसे ११८ ब्रह्माण्ड हैं।

परमेश्वर शिव ने अपनी चेतना के महासागर में ११८ बुलबले पैदा किये और हर बुलबुले को हम एक ब्रह्माण्ड कहते हैं जो अनंत विस्तार वाला हैं, जिसमे अरबों आकाशगंगाएँ हैं, कई ऐसी हैं जिसका प्रकाश अभी हम तक पहुँचा ही नहीं! क्योंकि प्रकाश की गति सीमित है वह एक सेकंड में तीन लाख किलोमीटर ही चल पाता है। हमसे सर्वाधिक नजदीक तारा हैं प्रोक्सिमा सेंट्युरी, अगर वह आज चमकना बंद कर दे तो हमको यह बात चार साल बाद मालूम पड़ेगी कि उसने चमकना बंद कर दिया क्योंकि उसके प्रकाश को हम तक आने में चार वर्ष लगते हैं। आज उस चमकते हुए तारे का जो प्रकाश हम देखते हैं वह चार वर्ष पहले वहाँ से चला था। जो दूर के तारे हैं उनसे तो लाखों करोड़ों वर्ष पहले के चले हुए प्रकाश को आज हम देख पा रहे हैं। न केवल शिव हमारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है और न केवल ये ब्रह्माण्ड ही शिव और शिव ही ब्रह्माण्ड है, वरन और भी ऐसे कई ब्रह्माण्ड हैं जो परमेश्वर शिव के चैतन्य में हैं और उस साम्राज्य में वह अकेला है। शिव अपने साम्राज्य में अकेला ही रहता है, वहाँ पर और कोई नहीं है। अगर हम समझें कि भगवान् के साथ में उनके कोई सहचर भी होंगे तो वह तो उनका ही स्वरूप है। साम्राज्य को जानने वाला कोई दूसरा नहीं है, जो जानता है वह भी शिव है। यह अंतिम बात है, अगर हमको समझ में आ जायेगी तो पूर्ण अद्वैत समझ में आ जाएगा। कोई 'वह' 'मैं' है ही नहीं न तो तुम हो न वह हैं वहाँ 'तुम' भी नहीं है 'वह' भी नहीं है, 'कोई' नहीं हैं, 'कुछ' भी नहीं हैं वहाँ पर केवल "मैं" है। वह एक अंतिम रूप से शिखर पर 'मैं' हैं। और यह बात समझ में आ जाये तो हमारी बोध की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है। क्योंकि हम जान गये तो भी यह नहीं कह सकते कि हममें कमियाँ नहीं हैं, लेकिन हम उस दिशा में आगे बढ़ गये, हमारा प्रयास आरम्भ हो गया। एक बीज डाल दिया अब उस बीज का पोषण करना हमारा काम है। सतत इस चिंतन में रहना ही पोषण करना है, बस इतनी ही बात हैं इस चिंतन में कि "मैं शिव हूँ"। चिल्लाने की भी जरूरत नहीं, सरल सामान्य व्यवहार करते रहें, वैसा ही करते रहें जैसी जिन्दगी

जी रहे हैं, न वस्त्र बदलना है न ही भोजन, न धर्म बदलना है न ही नाम, जो है बहुत अच्छा है, बस दृष्टि बदलना है। दो कुछ भी नहीं हैं, ये सब कुछ मैं ही हूँ, मेरा ही विस्तार हैं, ऐसा चिंतन करने में कोई आपत्ति नहीं हैं। अभिनवगुप्तजी भी कहते थे कि ऐसा चिंतन करना उचित है क्योंकि किसी न किसी दिन तुम जान ही जाओगे कि तुम शिव हो। अभी शिव नहीं हो क्योंकि अभी बोध नहीं है, तो भी इस चिंतन में रहो। अपने हृदय में विश्वास रखो कि तुम ही शिव हो, तुम शिव ही हो। जागरूकता में रहने की जरूरत है। तो हम आज हमारी बात यहीं पर समाप्त करते हैं। यहाँ हमारा बोधपञ्चदशिका का अध्ययन पूर्ण हो जाता है। परमेश्वर हम सब पर अनुग्रह करें। आगे से ईश्वरप्रत्यभिज्ञा का अध्ययन प्रारंभ करेंगे। गुरु नारायण----

हरिहर त्रिक आश्रम की साप्ताहिक सभा।

पूज्य गुरुदेव श्री हरिविलासजी आसोपा एवं माँ पुष्पा आसोपा।

बोधपञ्चदशिका को 1000 वर्षों पूर्व महान दार्शनिक आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने सामान्य बुद्धि सम्पन्न समर्पित शिष्यों के लिए लिखा था। इसमें उन्होंने मात्र 15 श्लोकों में पूर्ण अद्वैत शैव दर्शन (त्रिक दर्शन अथवा काश्मीर शैव दर्शन) समझा दिया था।हरिहर त्रिक आश्रम मध्यप्रदेश के महेश्वर नगर में पिछले 11 वर्षों से अद्वैत शैव दर्शन का केंद्र है जहां प्रति गुरुवार संध्या त्रिक दर्शन पर व्याख्यान आयोजित होते हैं। 2017 - 2018 में 9 सप्ताह तक बोधपञ्चदशिका पर व्याख्यानमाला आयोजित हुई थी। इन व्याख्यानों को कुछ साधकों ने लिखा और टाइप कर दिया। इस पुस्तक में इन व्याख्यानों के अलावा मूल श्लोक तथा हिंदी में श्लोकार्थ भी दिये गए हैं। यह रचना अद्वैत का सार है। जो ईश्वर और संसार के सत्य को जानने में रुचि रखते हैं उनके लिए यह साहित्य छोटा लेकिन अपने आप में पूर्ण है। ये समस्त तथ्य सारगर्भित तो हैं ही, रोचक भी है।